ज्योति शिखा

अंक: २५ वां जून १९७२

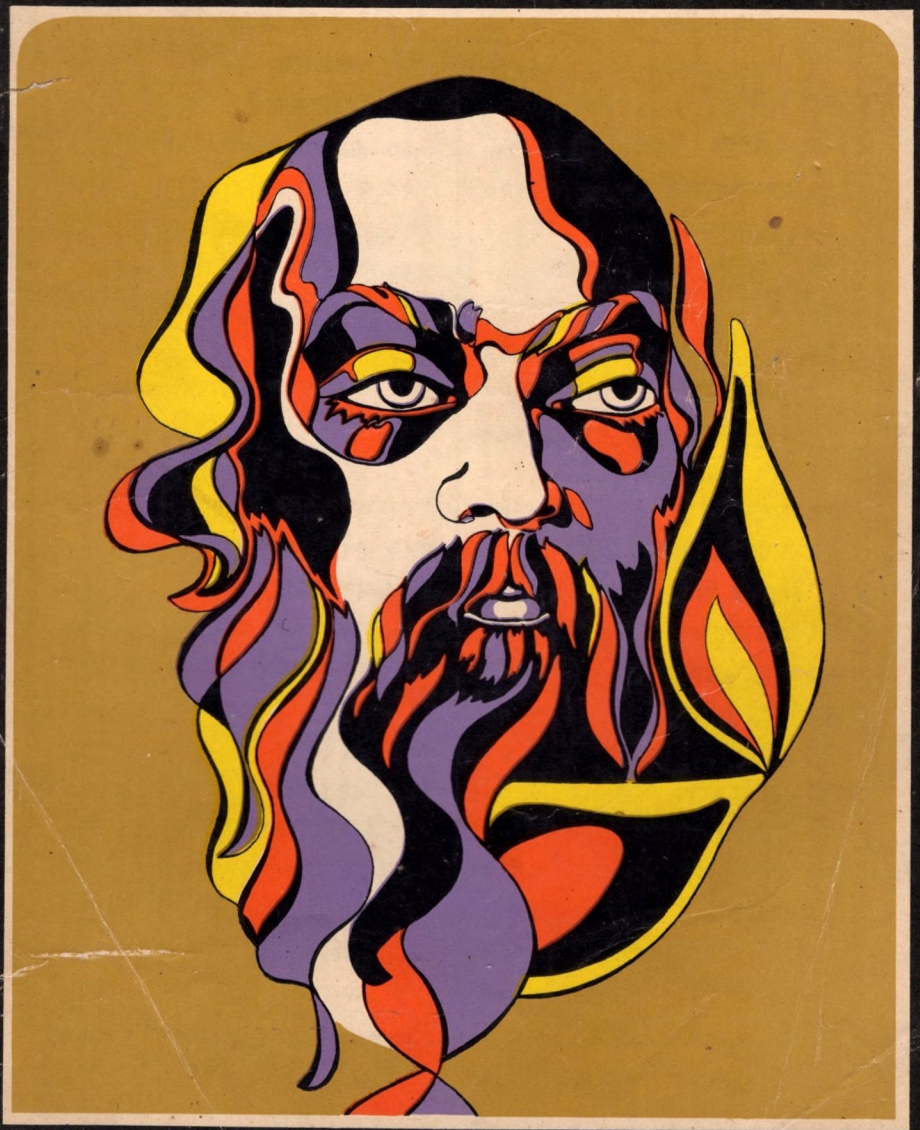

भगवान् श्री रजनीश हिन्दी साहित्य

१	महावीर मेरी दृष्टि में	३०.००
२	महावीर-वाणी	३०.००
३	जिन खोजा तिन पाइयाँ	२०.००
४	ईशावास्योपनिषद्	१२.००
५	प्रेम है द्वार प्रभु का	८.००
६	समुन्द समाना बुन्द में	७.००
७	घाट भुलाना बाट बिनु	७.००
८	सूली ऊपर सेज पिया की	७.००
९	सत्य की पहली किरण	६.००
१०	संभावनाओं की आहट	६.००
११	अन्तर्वीणा	६.००
१२	ढाई आखर प्रेम का	६.००
१३	मैं कहता आँखन देखी	६.००
१४	साधना-पथ	५.००
१५	मिट्टी के दिये	५.००
१६	संभोग से समाधि की ओर	५.००
१७	अन्तर्यात्रा	५.००
१८	अस्वीकृति में उठा हाथ (भारत, गाँधी और मेरी चिन्ता)	५.००
१९	प्रेम के फूल	५.००
२०	गीता - दर्शन (पुष्प-५)	६.००
२१	गहरे पानी पैठ	५.००
२२	क्रांति-बीज	४.००
२३	पथ के प्रदीप	४.००
२४	सत्य की खोज	४.००
*२५	प्रभु की पगडन्डियाँ	४.००
२६	समाजवाद से सावधान	४.००
*२७	ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया	४.००
३०	शून्य की नाव	३.००
*३१	अज्ञात की ओर	२.००
*३२	नये संकेत	२.००
३३	सिंहनाद	१.५०
३४	प्रेम और विवाह	१.५०
३५	प्रगतिशील कौन ?	१.५०
३६	विद्रोह क्या है ?	१.५०
३७	ज्योतिषःअद्वैत का विज्ञान	१.५०
३८	ज्योतिष अर्थात् अध्यात्म	१.५०
*३९	जन-संख्या विस्फोटःसमस्या और समाधान (परिवार नियोजन का परिवर्धित संस्करण)	१.५०
*४०	सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१.५०
*४१	सारे फासले मिट गये	१.२५
*४२	कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१.००
*४३	सूर्य की ओर उड़ान	१.००
*४४	मन के पार	१.००
४५	युवक और यौन	१.००
*४६	नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०.७५
*४७	प्रेम के पंख	०.७५
*४८	अमृत-कण	०.६०
*४९	अहिंसा-दर्शन	०.५०
*५०	पूर्व का धर्मः : पश्चिम का विज्ञान	०.५०
५१	क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार	०.३५

(शेष कवर पेज ३ पर)

ज्योति शिखा

भगवान श्री रजनीश की अमृतवाणी का त्रैमासिक संकलन

सम्पादक :

मा योग क्रांति

स्वामी कृष्ण कबीर

वर्ष : ७ वाँ, अंक १ : जून १९७२

आवरण सज्जा : **अर्हत**

वार्षिक शुल्क : रुपये ८–००, एक प्रति : रु. २.००

प्रकाशक :

मंत्री, **जीवन जागृति केंद्र**, ३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बन्दर रोड, बम्बई–९ फोन नं. ३२१०८५–३२७६१८

मुद्रक :

दि स्टेट पीपल प्रेस, जन्मभूमि भवन, घोगा स्ट्रीट, मुंबई-१.

अनुक्रम

१. हे समाधि सुमन ! — स्वामी कृष्ण कबीर ५

२. आशा की भावदशा ही आस्तिकता है..... ७

३. संन्यासी अर्थात् जो जाग्रत है, आत्मरत है, आनन्दमय है, परमात्म–आश्रित है ८

४. आप भगवान हैं ? २६

- ० भगवान और अतीन्द्रिय २७
- ० भगवान और अमीर ३०
- ० भगवान और राजनीति ४४
- ० भगवान और भारत की जनता ४७
- ० भगवान और तंत्र–विज्ञान ५१

५. रजनीश को भूल जायँ, भगवान भर याद रखें..... ५६

६. मैं कौन हूँ ?..... ५९

७. विज्ञान, धर्म और कला..... ६०

८. मुल्ला नसरुद्दीन के झूठे (!) लतीफे ८०

९. व्यक्तित्व नहीं अस्तित्व ..... साधु आनंद ब्रह्मदत्त ८५

१०. ० विकास ..... स्वामी कृष्ण कबीर ८४

० हर साँस जिन्दगी..... साधु योग प्रीतम ९२

११. पत्र-प्रेरणा..... ९४

१२. कुछ स्फुट विचार..... ९८

१३. स्वर्ण वाक्य ९९

हे समाधि-सुमन !

हे भगवन् !
हे समाधि सुमन !
पूजने दे तेरे चरन कमल,
देर न हो जाय कहीं.
न मैं रहूं, और –
तू तो है ही कहाँ ?
दर-दर की ठोकरें खाकर,
जन्मों-जन्मों ढूंढा है तुझे.
पाकर भी पाया
कि पाया कहाँ है ?

सुन न पायें तुझे हम,
हमें कहने तो दे
प्रार्थना – स्तुति ––
व्यर्थ ही सही, करने तो दे;
प्रार्थना ही हो जाने से पहले,
स्तुति ही हो जाने से पहले.
नदी भी तो सागर से मिलते
एक बार लौटकर देखती है न ?

—स्वामी कृष्ण कबीर

आशा की भावदशा ही आस्तिकता है

नीत्से ने कहा है : "परमात्मा मर गया है (God is dead)". यह समाचार उतना दुखद नहीं है जितना कि आशा का मर जाना, क्योंकि **आशा हो तो परमात्मा को पा लेना कठिन नहीं है**। और यदि आशा न हो तो परमात्मा के होने से भी कोई भेद नहीं पड़ता। आशा का आकर्षण ही मनुष्य को अज्ञात की यात्रा पर ले जाता है। और आशा ही प्रेरणा है जो कि उसकी सोई शक्तियों को जगाती है और उसकी निष्क्रिय चेतना को सक्रिय करती है।

क्या मैं कहूं कि आशा की भावदशा ही अस्तिकता है ?

और यह भी, कि आशा ही समस्त जीवन आरोहण का मूल उत्स और प्राण है ?

पर आशा कहां है ? मैं तुम्हारे प्राणों में खोजता हूं तो वहां तो निराशा की राख के सिवाय और कुछ भी नहीं मिलता ? और आशा के अंगारें न हों तो तुम जियोगे कैसे ? निश्चय ही तुम्हारा यह जीवन इतना बुझा हुआ है कि मैं इसे जीवन भी कहने में असमर्थ हूँ !

मित्र, मुझे आज्ञा दो कि मैं कहूँ कि तुम मर गये हो! असल में तुम कभी जिये ही नहीं, तुम्हारा जन्म तो जरूर हुआ था लेकिन वह जीवन तक नहीं पहुंच सका। **जन्म ही जीवन नहीं है। जन्म मिलता है। जीवन पाना होता है। इसलिए जन्म मृत्यु में छीन भी लिया जाता है। लेकिन जीवन को कोई भी मृत्यु नहीं छीन पाती है। जीवन जन्म नहीं है और इसलिये जीवन मृत्यु भी नहीं है।**

जीवन जन्म के भी पूर्व है और मृत्यु के भी अतीत है। और जो उसे जानता है, वही केवल भय और दुखों के ऊपर ऊठ पाता है।

—भगवान श्री रजनीश

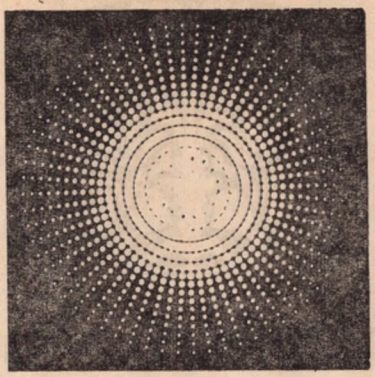

संन्यासी अर्थात् जो जाग्रत है, आत्मरत् है, आनन्दमय है, परमात्म आश्रित है.

संकलन : स्वामी अमृत रवि

विवेक रक्षा ।
करुणैव केलि : ।
आनंद माला ।
एकासन गुहायाम् मुक्तासन सुख गोष्ठी ।
अकल्पित भिक्षाशी ।
हंसाचार : ।
सर्वभूतान्तर्वर्तीम् हंस इति प्रतिपादनम् ।

विवेक ही उनकी रक्षा है ।
करुणा ही उनकी क्रीड़ा है ।
गुह्य एकान्त ही उनका आसन और मुक्त आनंद ही उनकी गोष्ठी है ।
अपने लिए नहीं बनायी गयी भिक्षा उनका भोजन है ।
हंस जैसा उनका आचार होता है ।
सर्व प्राणियों के भीतर रहने वाला एक आत्मा ही हंस है – इसी को वे प्रतिपादित करते हैं ।

सुना है मैंने कि एक अन्धे आदमी ने किसी फकीर को कहा है कि मुझे रास्ते बता दें इस गाँव के ताकि मैं भटक न जाऊँ। मुझे ऐसी विधि बता दें ताकि मैं किसी से टकरा न जाऊँ। मुझे ऐसे उपाय सुझा दें जिससे आँख वाले लोगों की दुनिया में मैं अंधा भी जीने में सफल हो सकूँ। उस फकीर ने कहा, न हम कोई विधि बतायेंगे, न कोई उपाय बतायेंगे और न हम कोई मार्ग बतायेंगे।

स्वभावत: अन्धा दुखी और पीड़ित हुआ। और सोचा भी नहीं था कि फकीर, करुणा जिनका स्वभाव है, ऐसा व्यवहार करेगा। कहा उसने कि मुझ पर कोई करुणा नहीं आती? फकीर ने कहा, करुणा आती है इसीलिए न तो बताऊंगा मार्ग, न बताऊंगा उपाय, न बताऊंगा ऐसी विधि जिससे तू अन्धा रह कर आंख वाले लोगों की दुनिया में में जी सके। मैं तुझे आंख खोलने का उपाय ही बता देता हूँ। और फिर उस फकीर ने कहा, सीख लेगा इस गांव के रास्ते लेकिन गांव रोज बदल जाते हैं। सीख लेगा इन आँख वालों के बीच रहना, लेकिन कल दूसरी आँख वालों के बीच रहना पड़ेगा। सीख लेगा विधियां, लेकिन विधियां सीमित परिस्थितियों में काम करती हैं सदा। मैं तुझे आंख ही खोलने का उपाय बता देता हूं।

उपनिषद् का यह ऋषि कहता है : **विवेक रक्षा**। संन्यासी के पास और कुछ भी नहीं है सिवाय उसके विवेक के, वही उसकी रक्षा है। न कोई नीति है, न कोई नियम है, न कोई मर्यादा है, न कोई भय है, न नर्क के दण्ड का कारण है, न स्वर्ग के प्रलोभन की आकांक्षा है। **बस, एक ही रक्षा है संन्यासी की – उसका विवेक, उसकी अवेयरनेस, उसकी आँखें।**

इसे समझें। विवेक रक्षा, इन दो छोटे शब्दों में बहुत कुछ छिपा है। सब साधना का सार छिपा है। एक ढंग तो है व्यवस्था से जीने का। क्या करना है, यह हम पहले ही तय कर लेते हैं। कहां से जाना है, कैसे गुजरना है, यह हम पहले ही तय कर लेते हैं। क्योंकि हमारा अपनी ही चेतना पर कोई भरोसा नहीं। इसलिए हम सदा ही भविष्य का चिन्तन करते रहते हैं और इसीलिए ही हम सदा ही अतीत की पुनरुक्ति करते रहते हैं। क्योंकि जो हमने कल किया था उसी को आज करना सुगम पड़ता है क्योंकि उसे हम जानते हैं, परिचित हैं, वह पहचाना हुआ है। लेकिन **संन्यासी जीता है क्षण में – अभी और यहीं**। अतीत को दोहराता नहीं क्योंकि अतीत को केवल मुर्दे दोहराते हैं। भविष्य की योजना नहीं करता, क्योंकि भविष्य की योजना केवल अन्धे करते हैं। इस क्षण में उसकी चेतना जो उसे कहती है वही उसका कृत्य बन जाता है। इस क्षण के साथ ही, सहज जीता है।

खतरनाक है यह। इसलिए उपनिषद् कहता है, विवेक ही उसकी रक्षा है।

होशपूर्वक जीता है, बस इतनी ही उसकी रक्षा है। और उसके पास कोई उपाय ही नहीं है। होशपूर्वक जीता है। पहले से तय नहीं करता कि कसम खाता हूं, क्रोध नहीं करूंगा। जो आदमी ऐसी कसम खाता है, पक्का ही क्रोधी है। एक तो तय है बात कि वह क्रोधी है। यह भी तय है कि वह जानता है कि मैं क्रोध कर सकता हूं। यह भी वह जानता है कि अगर कसमों का कोई आवरण खड़ा न किया जाय तो क्रोध की धारा कभी भी फूट सकती है। इसलिए अपने ही खिलाफ इन्तजाम करता है। कसम खाता है, क्रोध नहीं करूंगा। फिर कल कोई गाली देता है और क्रोध फूट पड़ता है। फिर और गहरी कसमें खाता है। नियम बांधता है, संयम के उपाय करता है, लेकिन क्रोध से छुटकारा नहीं होता। क्योंकि जिस मन ने नियम लिया था और मर्यादा बाँधी थी और जिस मन ने कसम खायी थी, उतना ही मन नहीं है, मन और बड़ा है। बहुत बड़ा है। जो मन तय करता है कि क्रोध नहीं करेंगे, गाली दी जाती है तो मन के दूसरे हिस्से क्रोध करने के लिए बाहर आ जाते हैं। वह छोटा हिस्सा जिसने कसम खायी थी पीछे फेंक दिया जाता है। थोड़ी देर बाद जब क्रोध जा चुका होगा, वह हिस्सा जिसने कसम खायी थी, फिर दरवाजे पर आ जायेगा मन के। पछतायेगा, पश्चाताप करेगा, कहेगा, बहुत बुरा हुआ। कसम खायी थी, फिर कैसे किया क्रोध ! लेकिन क्रोध के क्षण में इस हिस्से का कोई भी पता नहीं था।

मन का बहुत छोटा सा हिस्सा हमारा जागा हुआ है। शेष सोया हुआ है। **क्रोध आता है सोये हुए हिस्से से और कसम ली जाती है जागे हुए हिस्से से**। जागे हुए मन की कोई खबर सोये हुए मन को नहीं होती। सांझ आप तय कर लेते हैं, सुबह चार बजे उठ आना है और चार बजे आप ही करवट लेते हैं और कहते हैं आज न उठें तो हर्ज क्या है। कल से शुरू कर देंगे। छः बजे उठकर आप ही पछताते हैं कि मैंने तो तय किया था चार बजे उठने का, उठा क्यों नहीं। निश्चित ही आपके भीतर एक मन होता तो ऐसी दुविधा पैदा न होती।

लगता है बहुत मन हैं, मल्टी साइकिक है आदमी। ऐसा भी कह सकते हैं, एक आदमी एक आदमी नहीं, बहुत आदमी है, एक भीड़ है, क्राउड है। उसमें एक आदमी भीतर कसम खा लेता है सुबह चार बजे उठने की, बाकी पूरी भीड़ को पता ही नहीं चलता। सुबह उस भीड़ में से जो भी निकट होता है वह कह देता है, सो जाओ, कहां की बातों में पड़े हो। ऐसी हमारी जिन्दगी नष्ट होती है।

नियम से बंध कर जीने वाला व्यक्ति कभी भी परम सत्य के जीवन की तरफ कदम नहीं उठा पाता है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि नियम तोड़ कर जियें। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि मर्यादाएं छोड़ दें। उस फकीर ने भी उस अन्धे को नहीं कहा था कि

जब तक आंख ठीक न हो जाय तो तू अपनी लकड़ी फेंक दे। मैं भी नहीं कहता हूं। लकड़ी रखनी ही पड़ेगी जब तक आंख फूटी है, लेकिन लकड़ी को ही आंख समझ लेना नासमझी है। और यह जिद्द करना कि आंख खुल जायेगी तब भी हम लकड़ी को सम्हालकर ही चलेंगे, पागलपन है।

संन्यासी वह है, जो अपने को जगाने में लगा है। और इतना जगा लेता है अपने भीतर सारे सोये हुए अंगों को कि अपने सारे खण्डों को जगाकर एक कर लेता है। **उस अखण्ड चेतना (इन्टीग्रेटेड कॉससनेस) का नाम विवेक है।** जब मन टुकड़े-टुकड़े नहीं रह जाता, इकट्ठा हो जाता है और एक ही व्यक्ति भीतर हो जाता है तो 'हां' का मतलब 'हां' और 'न' का मतलब 'न', होने लगता है। **उस एक सुर से बंध गयी चेतना का नाम विवेक है। जागी हुई चेतना का नाम विवेक है।** होश से भर गयी चेतना का नाम विवेक है। ऋषि कहता है, विवेक ही रक्षा है। और कोई रक्षा नहीं है। अद्भुत है यह रक्षा क्योंकि विवेक जगा हो तो भूल नहीं होती। ऐसा नहीं कि भूल नहीं करनी पड़ती। ऐसा नहीं कि भूल को रोकना पड़ता है। ऐसा भी नही है कि भूल से लड़ना पड़ता है, बस ऐसा है कि भूल नहीं होती। जैसे आंखें खुली हों तो आदमी दीवाल से नहीं टकराता और दरवाजे से निकल जाता है। ऐसे ही भीतर विवेक की आग जगी हो तो आदमी गलत को नहीं चुनता और ठीक ही उसका मार्ग बन जाता है।

विवेक रक्षा। **जागा हुआ होना ही इस जगत में एक मात्र रक्षा है।** सोया हुआ होना इस जगत में हजार तरह की विक्षिप्तताओं को, हजार तरह की रुग्णताओं को निमंत्रण देना है। हजार तरह के शत्रु प्रवेश कर जायेंगे और जीवन को नष्ट कर देंगे। छिद्र-छिद्र कर देंगे। और खण्ड-खण्ड कर देंगे। तो जागना सूत्र है।

संन्यासी का अर्थ है, जो निरन्तर जागा हुआ जी रहा है, होशपूर्वक जी रहा है। कदम भी उठाता है तो जानते हुए कि कदम उठाया जा रहा है। श्वांस भी लेता है तो जानते हुए कि श्वांस ली जा रही है। श्वांस बाहर जाती है तो जानता है कि बाहर गयी, श्वांस भीतर जाती है तो जानता है कि भीतर गयी। एक विचार मन में उठता है तो जानता है कि उठा, गिरता है तो जानता है कि गिरा। मन खाली होता है तो जानता है कि मन खाली है। मन भरा होता है तो जानता है कि मन भरा है। एक बात पक्की है कि **जानने की सतत धारा भीतर चलती** रहती है और कुछ भी हो जानने का सूत्र भीतर चलता रहता है। यही रक्षा है, क्योंकि जानकर कोई गलत नहीं कर सकता। सब गलती अज्ञान है। या सब गलती मूर्छा है।

अभी तो कभी-कभी कोई व्यक्ति जागता है – कभी कोई बुद्ध – बुद्ध का अर्थ है जागा हुआ – कभी कोई महावीर, कभी कोई क्राइस्ट, कभी-कभी एकाध व्यक्ति जागता है हम सोये हुए लोगों की दुनिया में। हम उससे बहुत नाराज भी होते हैं। क्योंकि जहां बहुत लोग सोये हों, वहां एक आदमी का जगना दूसरों की नींद में बाधा बनता है। और वह जागा हुआ उत्सुक हो जाता है कि सोये हुओं को भी जगाये और सोये हुए बहुत नाराज होते है। उनकी नींद में दखल होती है। और यह जागा हुआ इस तरह की बातें करने लगता है कि उनके सपनों का खण्डन होता है। इसलिये हम सोये हुए लोग जागे हुए आदमी को समाप्त कर देते हैं। जब वह समाप्त हो जाता है तब हम उसकी पूजा करते हैं। पूजा नींद में चल सकती है। जागे हुए आदमी की दोस्ती नींद में नहीं चल सकती।

जागे हुए आदमी के साथ जीना हो तो दो ही उपाय है–या तो वह आपकी मान और सो जाय या आप उसकी मानें और जग जायं। पहले का तो उपाय है नहीं। जो जाग गया, वह सोने को राजी नहीं हो सकता है। जिसके हाथ में हीरे आ गये वह कंकड़ पत्थर रखने को राजी नहीं हो सकता। जिसको अमृत दिखायी पड़ गया उसको आप डबरे के पानी को पीने को कहें, मुश्किल है। असंभव है। आपको ही जगना पड़े उसके साथ।

सत्संग का यही अर्थ था, यही अर्थ था कि किसी जागे हुए पुरुष के पास होना। उस जागे हुए के पास होने से शायद आपकी नींद भी टूट जाय। चाहे तो नींद का एकाध कण भी टूटे, करवट बदलते वक्त जरा सी आंख भी खुले और जागे हुए व्यक्तित्व का दर्शन हो जाय तो शायद आकांक्षा, प्यास जगे, अभीप्सा पैदा हो और आप भी जागने की यात्रा पर निकल जायें। अगर कभी ऐसा हुआ कि बहुत लोग जाग सकें और जागे लोगों का समाज बन सका तो निश्चित ही यह बात हम उस दिन कहेंगे कि हमारे पूरे इतिहास में, हमने जिन लोगों को जुल्मी ठहराया, अपराधी ठहराया वह गल्ती हो गयी। वे सोये हुए लोग थे। सोये हुए लोग अपराध करेंगे ही।

अदालतें माफ कर देती हैं, अगर नाबालिग व्यक्ति अपराध करे। क्योंकि अदालत कहती है, अभी समझ कहां। लेकिन बालिग के पास समझ है। अदलतें क्षमा कर देती हैं अपराधों को या कम कर देती हैं, न्यून कर देती हैं, अगर आदमी ने नशे में किया हो, क्योंकि वे कहते हैं कि जो होश में नहीं था उसके ऊपर जिम्मेवारी क्या। लेकिन हम, होश में हैं। सच तो यह है कि **हमारा पूरा इतिहास सोये हुए आदमियों के कृत्यों का इतिहास है**। इसीलिए तो तीन हजार वर्षों में हमको सिवाय युद्धों के और कुछ नहीं मिलता। तीन हजार वर्ष में चौदह हजार सात सौ युद्ध हुए जमीन

पर और ये तो बड़े युद्ध हैं जिनका इतिहास उल्लेख करता है। दिन भर छोटी मोटी लड़ाइयां जो हम करते हैं– परायों से और अपनों से, उनका तो कोई हिसाब नहीं, लेखा-जोखा नहीं। पूरी जिन्दगी हमारी कलह के अतिरिक्त और क्या है और पूरी जिन्दगी हम सिवाय दुख के और क्या अर्जित कर पाते हैं। यह सोये हुए होन की अनिवार्य परिणति है।

ऋषि कहता है, संन्यासी का तो विवेक ही रक्षा है। हिम्मतवर लोग थे। बड़े साहसी थे, जिन्होंने यह कहा। नहीं कहा कि नीति में रक्षा है, नियम में रक्षा है। नहीं कहा मर्यादा में रक्षा है, नहीं कहा शास्त्र में रक्षा है, नहीं कहा गुरू में रक्षा है, कहा विवेक में रक्षा है। होश में रक्षा है। होश के अतिरिक्त कोई रक्षा नहीं हो सकती।

करुणा ही उनकी क्रीड़ा है। जागे हुओं का एक ही खेल है– करुणा। कहें कि एक ही उनका रस बाकी रह गया है। कहें कि बस एक ही बात उन्हें और करने योग्य रह गयी — करुणा।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, फिर वह चालीस वर्ष जीवित थे। हम पूछ सकते हैं कि जब ज्ञान हो गया, अब चालीस वर्ष जीवित रहने का कारण क्या है ?– करुणा। महावीर को ज्ञान, हुआ उसके बाद वे भी इतने ही समय जीवित थे। जब ज्ञान ही हो गया और परम अनुभूति हो गयी तो अब इस शरीर को ढोने की और क्या जरूरत है ?–करुणा। **जो भी जान लेता है, जानने के साथ ही उसके भीतर वासना तिरोहित हो जाती है और करुणा का जन्म होता है।** वासना में जो शक्ति काम आती है वही ट्रांसफॉर्म, वही रुपांतरित होकर करुणा बन जाती है।

हम वासना में जीते हैं। वासना जीवन है। वासना का अर्थ है, हम कुछ पाने को जीते हैं। जब वासना रूपांतरित होती है, करुणा बनती है, तो उल्टी हो जाती है। करुणा का अर्थ है, हम कुछ देने को जीते हैं। लेकिन उल्टी है यह हमारी दुनिया, बड़े कण्ट्राडिक्शंस, बड़े विरोधाभासों से भरी। वासना से जो भरे हैं, उन्हें हम सम्राट कहते हैं और करुणा से जो भरे हैं उन्हें हम भिक्षु कहते हैं। जो दे रहे हैं सिर्फ, वे भिखारी हैं और जो ले रहे हैं सिर्फ, वे सम्राट हैं।

गहरा व्यंग है बुद्ध का इसमें। बुद्ध अपने को भिक्षु कहते हैं – कि मैं भिखारी हूं। और हम सब भी राजी हो जाते हैं कि ठीक है, दो रोटी तो बुद्ध हमसे मांगते ही हैं। तो भिखारी तो हो ही गये। बुद्ध हमें क्या देते हैं, उसकी कोई कीमत आंकी जा सकती है ? लेकिन हमें यह भी पता न चले कि वे हमें दे रहे हैं, इसकी भी वे चेष्टा करते हैं। इसलिए दो रोटी हमसे लेकर भिखारी बन जाते हैं। कहीं हमें ऐसा

न लगे कि वे हमें देकर हम पर कोई एहसान कर रहे हैं। करुणा इतना भी नहीं चाहती है। **और हम ऐसे नासमझ हैं कि अगर हमें यह पता चल जाय कि बुद्ध हमें कुछ दे रहे हैं तो हमारे अहंकार को चोट लगे।** शायद हम लेने का दरवाजा ही बन्द कर दें इसलिए बुद्ध हमसे दो रोटी ले लेते हैं। हमारे अहंकार को बड़ा रस आता है। लेकिन हमें पता नहीं कि हम एक बहुत हारती हुई बाजी लड़ रहे हैं। बुद्ध दो रोटी लेते हैं और जो देते हैं उसका हमें पता भी नहीं चलता। दो रोटी में बुद्ध को कुछ भी नहीं मिलेगा, लेकिन वह जो हमें दे रहे हैं वह हमारे अहंकार को पूरी तरह भस्मीभूत कर देगा, राख कर देगा। हमारे भीतर वह जो अस्मिता है उसे मिटा देगा।

करुणा का अर्थ है, देने के लिए जीना। वासना का अर्थ है लेने के लिए जीना। वासना भिखारी है, करुणा सम्राट है। लेकिन दे कौन सकता है ? दे वही सकता है जिसके पास हो और वही दिया जा सकता है जो हमारे पास हो। वह तो नहीं दिया जा सकता है जो हमारे पास न हो। वही दिया जा सकता है, जो हमारे पास हो। हम तो मागंकर ही जीते हैं पूरे जीवन में, हमारे पास कुछ भी नहीं है। प्रेम भी हम मांगते हैं कि कोई दे। धन भी हम मांगते हैं कि कोई दे। यश भी हम मांगते हैं कि कोई दे। बड़े से बड़ा राजनेता भी भिखारी ही होता है, क्योंकि आप सबसे मांग कर जीता है। आप देते हो यश तो मिलता है उसे, आप खींच लेते हो तो खो जाता है। दो दिन अखबार में उसका नाम नहीं छपता तो बात खत्म हो गयी। लोग भूल जाते हैं कि कहां गया, कौन था, था भी या नहीं था।

१९१७ में लेनिन जब सत्ता में आया रूस में तो उसके पहले जो प्रधान मंत्री था रुस का करेंस्की, वह १९६० तक जिन्दा था। जब भरा तभी लोगों को पता चला कि वह अब तक जिन्दा था। क्योंकि वह एक किराने की दुकान कर रहा था अमरीका में। लोग भूल ही चुके थे, बात ही खत्म हो चुकी थी। वह तो मरा, तब पता चला कि यह आदमी जिन्दा था। कभी वह रूस में सर्वाधिक शक्तिशाली आदमी था, लेनिन के पहले वह सर्वाधिक शक्तिशाली आदमी था, फिर वह ना-कुछ हो गया।

राजनेता भी हमसे यश मांगकर जीता है। जो भी हमसे मांगकर जीता है वह संन्यासी नहीं है। संन्यासी तो वह है जो हमें देकर जीता है। और देने की बात भी नहीं करता कभी कि आपको कुछ दिया है। ऐसे उपाय करता है कि आपको लगे कि आपने ही उसे कुछ दिया।

करुणा ही उसकी क्रीड़ा है। करुणा भी क्रीड़ा है, यह बहुत मजेदार बात है।

यह नहीं कहा कि करुणा ही उसका काम है । इट इज नाट ए वर्क, बट ए प्ले । **काम नहीं है करुणा, खेल है, क्रीड़ा है ।** क्रीड़ा और काम में क्या फर्क है ? कुछ बुनियादी फर्क है । एक तो यह कि काम अपने आप में मूल्यवान नहीं होता, क्रीड़ा अपने आप में मूल्यवान होती है । अगर आप सुबह घूमने निकले हैं और कोई पूछे कि किसलिए घूमने निकले हैं तो आप कहेंगे कि घूमने में आनन्द है । किसलिए नहीं, कहीं पहुंचने के लिए नहीं निकले हैं । कोई मंजिल नहीं है कोई गन्तव्य नहीं है । फिर उसी रास्ते आप अपने दफ्तर जाते हैं । कोई आदमी पूछता है, बड़े आनन्द से टहल रहे हैं आप, तो आप कहते हैं, टहल नहीं रहा हूं, दफ्तर जा रहा हूं । और कभी आपने ख्याल किया है कि रास्ता वही होता है, आप वही होते हैं । सुबह जब टहलने निकलते हैं तब पैरों का आनन्द और है, और जब उसी रास्ते से दफ्तर की तरफ जाते हैं तो छाती पर पत्थर और है । रास्ता वही, पैर वही, चलना वही, आप वही, सब वही । सिर्फ एक बात बदल गयी कि अब चलना काम है, और तब चलना खेल था । जो बुद्धिहीन हैं वे अपने खेल को भी काम बना लेते हैं और जो बुद्धिमान हैं वे अपने काम को भी खेल बना लेते हैं ।

ऋषि कहता है, क्रीड़ा है करुणा उनकी, वह भी काम नहीं है । वह भी कोई बोझ नहीं है । वह भी कुछ ऐसा नहीं है कि बुद्ध ने तय ही कर रखा है कि इतने लोगों को निर्वाण करवा कर रहेंगे । अगर न हुआ तो बड़े दुखी होंगे, बड़े पीड़ित होंगे, बड़े पछतायेंगे । बुद्ध ने कुछ तय नहीं कर रखा है कि आपका अज्ञान तोड़कर ही रहेंगे, नहीं टूटा तो छाती पीटकर रोयेंगे । खेल है, आनन्द है कि आप जग जायं । न जगें, आपकी मर्जी, बात समाप्त हो गयी । खेल पूरा हो गया । तो एक व्यक्ति भी न जगे बुद्ध के प्रयासों से तो भी बुद्ध उसी आनन्द से परिभ्रमण करके विदा हो जायेंगे । उस आनन्द में कोई फर्क न पड़ेगा ।

बुद्ध का आनन्द था कि वह बांट दें । नहीं लिया, वह जिम्मा आपका है उसके लिए उन्हें पीड़ित होने का कोई भी कारण नहीं । इसलिए कहा कि करुणा क्रीड़ा, खेल बन जाय तो आनन्द है और काम बन जाय तो बोझ है । तो फिर बुद्ध मरते वक्त हिसाब रखेंगे कि इतने लोगों से कहा, किसी ने लिया ? नहीं लिया । इतने लोगों को समझाया, कोई समझा ? नहीं समझा, तो मेरा श्रम व्यर्थ गया । ध्यान रखिये, काम अगर पूरा न हो, फल न लाये तो श्रम व्यर्थ चला जाता है । लेकिन क्रीड़ा का श्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता । वह क्रीड़ा में ही पूर्ण हो गया । कोई फल का सवाल नहीं । और इसलिए भी क्रीड़ा कहा कि **सिर्फ क्रीड़ा ही फलाकांक्षा से मुक्त हो सकती है** । काम कभी भी फलाकांक्षा से मुक्त नहीं हो सकता ।

कृष्ण ने गीता में फलाकांक्षारहित कर्म की बात कही है। इस उपनिषद् का ऋषि ज्यादा ठीक शब्द प्रयोग कर रहा है, कृष्ण से भी ज्यादा ठीक शब्द का। क्योंकि फलाकांक्षारहित कर्म, कर्म होगा तो उसमें फलाकांक्षा हो जायेगी। या फिर कर्म का अर्थ क्रीड़ा करना पड़ेगा। इसलिए ऋषि ने यह नहीं कहा कि करुणा उनका कर्म। कहा, करुणा उनका खेल। कहीं कोई आकांक्षा उससे तृप्त होने को नहीं। कहीं कोई इच्छा भविष्य में पूरी हो इसलिए यात्रा पर नहीं निकलते हैं। किसी वासना का तीर प्रत्यंचा पर नहीं चढ़ा है। कोई लक्ष्य नहीं है, जिसे वेध डालना है। नहीं, बस यह मौज है।

भीतर आनन्द भर गया है, यह बाहर बिखरना चाहता है, लुटना चाहता है। जैसे फूल खिल गये हैं। जैसे फूल खिल गये हैं वृक्ष पर और उनकी सुगन्ध रास्ते पर गिरती है। यह क्रीड़ा है। यह वृक्ष इसकी चिन्ता में नहीं है कि कौन निकलता है नीचे से और जो निकलता है वह व्ही. आई. पी. है या नहीं, कोई प्रतिष्ठित आदमी निकलता है कि कोई गरीब मजदूर निकलता है, कि आदमी निकलता है कि गधा निकलता है। वृक्ष को कोई मतलब नहीं है। गधे को भी वृक्ष अपने फूल की सुगन्ध वैसी ही दे देता है जैसा एक राजनीतिक नेता नीचे से निकले तो उसको भी दे। कोई भेद नहीं करता। और कोई नहीं निकलता, निर्जन हो जाता है रास्ता तो भी फूल की सुगन्ध गिरती रहती है क्योंकि यह फूल का अंतर–आनंद है। यह किसी के प्रति प्रेरित नहीं है – इट इज नाट एड्रेस्ड। यह जो सुगन्ध है इस पर किसी का पता नहीं लिखा है कि इसके पास पहुंचे – अन-एड्रेस्ड है। यह किसी के प्रति नहीं है, यह तो फूल का अन्तर्आविर्भाव है। यह तो **भीतर उसके प्राणों में जो सुगन्ध भर गयी है उसे वह लुटा दे रहा है।** हवाएं ले जायेंगी। खाली खेतों में पड़ जायेगी, निर्जन रास्तों पर लुट जायेगी। आनन्द है उसे लुटा देने में।

एक बहुत अद्भुत घटना मैंने सुनी है। सुना है मैंने कि एक बहुत बड़ा मनोचिकित्सक विलिहम रेक, अभी पश्चिम में जो थोड़े से कीमती आदमी इस आधी सदी में हुए उनमें से एक था। और जो होता है कीमती आदमियों के साथ वही उसके साथ भी हुआ। दो साल तो विलिहम रेक को जेलखाने में रहना पड़ा। और जो आदमी कम से कम पागल था, अमरीका के कानून और समाज ने उसे पागल करार देकर पागलखाने में डाल दिया। **हमारे ढंग नहीं बदलते। हजारों साल बीत जायं हम वही करते हैं।** उसमें कोई फर्क नहीं होता।

विलिहम रेक एक मरीज का इलाज कर रहा था – एक बीमार, मानसिक बीमार का। उसका मनोविश्लेषण कर रहा था। तीन बजे का उसे वक्त दिया था,

तीन बजे नहीं आया मरीज । सवा तीन बज गये, घड़ी देखी । ठीक सवा तीन बजे मरीज भागा हुआ अन्दर आया, उसने कहा, क्षमा करना, मुझे थोड़ी देर हो गयी । विलिहम रेक ने कहा– "यू केम जस्ट इन टाइम, अदरवाइज, आई वाज टु बिगिन माई वर्क ।" इसका इलाज कर रहा है, इसकी मनोचिकित्सा कर रहा है । विलिहम रेक ने कहा, तुम ठीक वक्त पर आ गये, समय के भीतर आ गये, नहीं तो मैं अपना काम शुरू करने वाला था । उस मरीज ने कहा, लेकिन जब मैं आता ही नहीं तो आप काम कैसे शुरू करते । मेरा ही तो मनोविश्लेषण होना है । फूल निर्जन में सुगन्ध डाले तो हमारी समझ में आ सकता है, लेकिन विलिहम रेक अगर बिना मरीज के विश्लेषण शुरू कर दे तो हम भी कहेंगे पागल है । विलिहम रेक ने कहा कि तू तो सिर्फ निमित्त है । तू नहीं भी आता तो काम हम शुरू कर ही देते । वह हमारा आनन्द है ।

यह समझना कठिन होगा । **फूल को समझ लेना आसान है** । क्योंकि फूल को हम पागल नहीं सोच सकते । **आदमी को समझना कठिन है** । ऐसा हो सकता है, ऐसा हुआ है कि फूल की तरह निर्जन में भी जागे हुए पुरुषों की वाणी गूंजी है ।

लाओत्से के बाबत सुना है मैंने कि कई बार ऐसा हुआ कि वह किसी वृक्ष के नीचे बैठा है और बोल रहा है । राहगीर कोई निकला, ठिठक कर खड़ा हो गया । चौंक कर उसने देखा, सुनने वाला कोई भी नहीं । पास जाकर राहगीरों ने पूछा कि यहाँ कोई दिखायी नहीं देता सुनने वाला । आप बोल रहे हैं, किससे ? लाओत्से कहता, यह अन्तर्भाव है । कोई चीज भीतर जन्म गयी है उसे बाहर डाले दे रहा हूँ । अभी सुनने वाला नहीं है, शायद कभी कोई सुन ले । आज मौजूद नहीं है सुनने वाला लेकिन आज बोलने की बात पैदा हो गयी है । कहीं ऐसा न हो कि कल सुनने वाला हो और कहने वाला न रहे तो मैं बात छोड़े जा रहा हूं । **हवाएं इसे सम्हाले रखेंगी, आकाश इसका स्मरण रखेगा और कभी जब सुनने को कोई तैयार होगा तो सुन लेगा** । यह कठिन होगा समझना हमें । लेकिन यही है । अब ऐसे लोग काम से नहीं जीते, ऐसे लोग क्रीड़ा से जीते हैं । इन्हें जीवन एक बोझ नहीं, एक नृत्य है ।

ऋषि कहता है, आनन्द ही उनकी माला है । वे और कुछ नहीं पहनते, आनन्द की ही माला पहने रहते हैं उसमें आनन्द के ही गुरिये हैं, उसमें आनन्द का ही धागा पिरोया हुआ है । वे प्रतिक्षण अहोभाव में जीते हैं – प्रतिपल । कोई ऐसी परिस्थिति नहीं है जो उन्हें दुख में डाल सके । हम परिस्थिति से दुखी होते हैं, परिस्थिति से सुखी होते हैं । कारण होता है हमारे दुख का और कारण होता है हमारे सुख का । ध्यान रहे, जब तक कारण होता है हमारे सुख का और दुख का, तब तक हमें आनन्द का कोई भी पता नहीं क्योंकि आनन्द अकारण है । कारण सब बाहर होते हैं, इसलिए

सुख भी बाहर होता है। दुख भी बाहर होता है। अकारण अवस्था जो है वह भीतर होती है, इसलिए आनन्द भीतर होता है।

और ध्यान रहे, जो परिस्थिति पर निर्भर होकर जीता है वह गुलाम है, वह गुलाम होगा ही। गुलाम इसलिए होगा कि परिस्थिति कभी भी बदल सकती है और उसका सुख दुख हो सकता है। और परिस्थिति कभी भी बदल सकती है और उसका दुख सुख हो सकता है। परिस्थिति उसके हाथ में नहीं, परिस्थिति मेरे हाथ में नहीं।

आनन्द ही उनकी माला है। संन्यास में जो गये गहरे वे परिस्थिति पर निर्भर होकर नहीं जीते। उनके सुख का कोई कारण बाहर नहीं होता। **बस वे आनंदित होते हैं अकारण।** तब फिर परिस्थिति कुछ भी नहीं कर सकती। आग लगा दें उनमें तो भी वे उसी आनंद में होते हैं। फूल बरसा दें उनके ऊपर तो भी वे उसी आनन्द में होते हैं। भीतर उनके कोई रंच-मात्र फर्क नहीं पड़ता। और जब भीतर रंच-मात्र फर्क नहीं पड़ता परिस्थिति से, तभी हम बाहर से, पदार्थ से मुक्त हुए, ऐसा समझें। उसके पहले नहीं।

इसका यह मतलब नहीं कि बुद्ध की छाती में छुरा आप मारेंगे तो बुद्ध के प्राण न निकल जायेंगे। बिल्कुल निकल जायेंगे, शायद आपसे ज्यादा जल्दी निकल जायेंगे। यह भी मतलब नहीं कि बुद्ध के पैर में कांटा गड़ेगा और खून न बहेगा, जरूर बहेगा, शायद आपसे ज्यादा ही बहेगा। क्योंकि बुद्ध कांटे पर भी कठोर नहीं हो सकते। और छुरा भी छाती में जायेगा तो बुद्ध उसके साथ भी कोआपरेट करेंगे, सहयोग करेंगे। वह और भीतर चला जायेगा। बुद्ध को जहर देंगे तो बुद्ध भी मर जायेंगे। लेकिन फिर भी भीतर कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। बुद्ध जहर से ही मरे। भूल से दिया था जहर, जान कर नहीं डाला था। एक गरीब आदमी ने बुद्ध को नियंत्रण दिया था भोजन के लिए और बिहार में लोग कुकुरमुत्ते को इकटठा कर लेते हैं। वह जो बरसात में, गीली जगह में लकड़ी पर कहीं भी पैदा हो जाती है छतरी बरसा की, उसे कुकुरमुत्ता कहते हैं। उसे इकट्ठा कर लेते हैं, सुखा लेते हैं तो वह वर्ष भर सब्जी का काम देता है, लेकिन वह कभी-कभी पायजनस (जहरीला) हो जाता है। ऐसी गलत जगह पैदा हो तो उसमें कभी-कभी जहर हो जाता है। एक गरीब आदमी ने बुद्ध को निमंत्रण दे दिया। बहुत रोका लोगों ने। सम्राट भी उस गांव का निमंत्रण देने आया, लेकिन थोड़ी देर हो गयी थी। बुद्ध ने कहा, थोड़ी देर हो गयी, निमंत्रण तो मैं स्वीकार कर चुका हूं। उस गरीब ने कुकुरमुत्ते की सब्जी बनायी थी। और तो उसके पास कुछ

था नहीं--रोटी थी, नमक था, कुकुरमुत्ते की सब्जी थी। वह जहरीली थी। कड़वा जहर था। लेकिन बुद्ध उसे खाये चले गये। और उसकी सब्जी का गुणगान करते रहे। और उससे कहते रहे, तूने कितने प्रेम से बनायी। और कितने आनन्द से बनायी है। मैंने भोजन तो बहुत जगह किये, आहार बहुत सम्राटों के यहां किये, लेकिन तेरे जैसा प्रेम कहीं भी नहीं था। लेकिन घर आते ही, जहां ठहरे थे, निवास पर लौटते ही पता चला कि जहर फैलना शुरू हो गया। चिकित्सक बुलाये गये, लेकिन देर हो गयी। बुद्ध की मृत्य उसी जहर से हुई।

मरने के पहले बुद्ध ने आनन्द को पास बुलाकर उसके कान में कहा कि आनन्द, गांव में जाकर डुण्डी पीट देना कि जिस व्यक्ति के घर मैंने अंतिम भोजन किया है यह महाभाग्यवान है। क्योंकि एक तो भाग्यवान वह मां थी मेरी, जिसके साथ मैंने अपना पहला भोजन लिया था। और उसी मां की कीमत का यह आदमी है जिसके साथ मैंने अंतिम भोजन लिया। तो बुद्ध पुरुष जिसके यहां अंतिम भोजन लेते हैं वह महाभाग्यवान है, ऐसा गांव में डुण्डी पीट देना।

आनन्द ने कहा, यह आप क्या कहते हैं, हमारे प्राण खौल रहे हैं उस आदमी के खिलाफ। बुद्ध ने कहा, इसीलिए कहता हूँ कि डुण्डी पीट देना। नहीं तो मेरे मरने के बाद वह गरीब मुसीबत में न पड़ जाय। लोग कहीं उस पर न टूट पड़ें कि तेरे भोजन से मृत्यु हो गयी। मृत्यु तो हो जायेगी जहर से, लेकिन भीतर वही आनंद, भीतर वही करुणा कि वह आदमी मुसीबत में न पड़ जाय। मरते हुए बद्ध को फिक्र यही है। कहीं उसके नाम के साथ निन्दा का स्वर न जुड़ जाय। कहीं इतिहास ऐसा न लिख दे कि उस गरीब आदमी पर ही पाप चला जाय कि उसी ने हत्या करवा दी। भीतर अन्तर नहीं पड़ता। **आनन्द ही उनकी माला है। आनन्द ही उनका अस्तित्व है।**

गुह्य एकांत ही उनका आसन है-- एकासन गुहायाम्। इसमें दो शब्द समझ लेने जैसे हैं, **गुह्य** और **एकांत**। अगर सच में ही एकांत खोजना है तो स्वयं के भीतर खोजे बिना नहीं मिलेगा। कहीं भी चले जायं, पहाड़ पर जायं, कैलाश पर जायं, जगलों में जायं, गुफाओं में जायं, कहीं भी जायं, एकांत नहीं मिलेगा। जो बाहर एकांत को खोजता है वह एकाँत को पा ही नहीं सकेगा। जायें कहीं भी, दूसरा सदा मौजूद होगा। आदमी न होंगे, पशु पक्षी होंगे, पशु पक्षी न होंगे पौधे, वृक्ष, पत्थर की चट्टानें होंगी। लेकिन दूसरा मौजूद होगा। दूसरे से बचने के लिए बाहर कोई उपाय नहीं। एक ही जगह है, अन्तर गहा। भीतर एक गुह्य स्थान है। जहां स्वयं के अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। वहीं एकान्त है।

ऋषि कहता है, एकासन गुहायाम्। वह जो अन्तर की गुहा है उस एकांत म ही प्रवेश कर जाना उनका आसन है। वे इसी आसन को खोजते हैं। हम आसन सब जानते हैं, योगासन हम जानते हैं। कोई सिर के बल खड़ा है, कोई शीर्षासन कर रहा है, कोई सिद्धासन कर रहा है, लेकिन ऋषि कहता है, ये आसन उनके आसन नहीं हैं। ये भी बाहर की क्रियाए हैं। उपयोगी हैं, हितकर हैं, उनसे लाभ ही होता है, लेकिन यह उनका आसन नहीं है जो परम गति में प्रवेश करना चाहते हैं। **उनका आसन तो एक ही, स्वयं की ही गुहा में अकेले बच रहना।** वही एकासन है, वही एक काम है। जहाँ मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

और यह बहुत मजे की बात है कि जहां मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं है, वहां मैं भी नहीं बचता हूं। मेरे बचने के लिए दूसरे का होना जरूरी है। क्योंकि मैं दूसरे का ही छोर हूँ। **अगर "तू" न बचे तो "मैं" के बचने के कोई उपाय नहीं हैं।** तू को देखकर ही मैं जन्मता है। इसीलिए तो आप भीड़ को खोजते हैं। हर आदमी भीड़ को खोजता है। क्योंकि भीड़ में जितना मैं मालूम पड़ता है उतना अकेले में बिखर जाता है। बड़ी भीड़ आपके ऊपर नजर रखे तो आपका "मैं" बहुत संगठित हो जाता है, बहुत क्रिस्टलाइज्ड, मजबूत हो जाता है। नेतृत्व का रस यही है कि लाखों लोगों की आंखें मुझ पर हैं। और मेरा मैं मजबूत हो जाता है। कोई देखने वाला नहीं, कोई "तू" नहीं तो "मैं" के बचने का कोई उपाय नहीं।

"मैं" एक रियेक्शन है, एक प्रतिक्रिया है "तू" के सामने, एक प्रतिध्वनि है। तो जहां मेरे भीतर मैं पहुंचूं अकेले में, नितांत एकांत में, जहाँ कोई भी न बचे, दूसरा रहे ही न, दुई हो ही न, द्वैत का पता ही न चले, दूसरा मिट ही जाय, भूल ही जाय तो ध्यान रखना, वहां मैं भी न बचूंगा।

दूसरे के गिरते ही मैं भी गिर जाता है। तब सिर्फ गुह्य एकान्त रह जाता है। वहां न तू होता है, न मैं होता है। वहां न कोई अपना होता है, न पराया होता है। स्वयं का भी होना नहीं होता। अहंकार भी वहां नहीं है। ऐसे गुह्य एकान्त को ऋषि कहता है आसन है। यही है आसन लगाने जैसा, यही है जिसमें बैठें और जिसमें डूबें और जिसमें जियें और जिसके साथ एक हो जायं।

मुक्तासन सुख गोष्ठी। मुक्त आनन्द में उनकी गोष्ठी है। मुक्त आनंद उनकी चर्या है, मुक्त आनन्द ही उनका उपदेश है। मुक्त आनन्द ही उनकी चर्या है। मुक्त आनन्द तभी संभव है जब मैं इतना अकेला हो जाऊं कि मैं भी न बचूं। अगर दूसरा मौजूद है तो बन्धन जारी रहेगा। अगर मैं भी मौजूद हूं तो भी बन्धन

जारी रहेगा। न तू बचे, न मैं बचूं तो वहां चेतना मुक्त हो जाती है, सब बन्धन से बाहर हो जाती है। उस मुक्त आनन्द को ऋषि न कहा है, वही उनकी गोष्ठी है। वही उनका सत्संग है। उस आनन्द के साथ ही उनकी चर्या है, उस आनन्द के साथ बिहरना ही उनकी चर्या है, उस आनंद में जीना ही उनका जीवन है। इतना अकेला हो जाना कि जहां मैं भी न बचूं।

अपना भी साथ होता है। कभी आपने ख्याल किया कि जब और कोई बात करने को नहीं मिलता है तब आप अपने से ही बात करते हैं। कभी आपने ख्याल किया कि लोग ताश के पत्तों का ऐसा खेल तक खेलते हैं जिसमें दोनों तरफ से चालें वे ही चलते हैं। कोई खेलनेवाला न मिले तो क्या करियेगा। तो ताश के पत्ते बिछाकर आदमी दोनों तरफ की चालें चलता है – अकेला खुद ही। आप भी चौबीस घण्टे इस तरह की चालें चलते हैं। आपके भीतर निरन्तर डायलॉग चलता है। दो नहीं है वहां, इसलिए डायलॉग होना नहीं चाहिए। दूसरा हो तो बातचीत चलनी चाहिए, आप अपने ही से बातचीत चलाते हैं। आप ही चोर बन जाते हैं, आप ही मैजिस्ट्रेट भी बन जाते हैं। भीतर बड़ा नाटक चलता है। करीब-करीब आप सभी का अभिनय भीतर कर लेते हैं। आप वह भी कह लेते हैं जो आप कहना चाहते हैं। जिससे आप कहना चाहते हैं उसकी तरफ से जवाब भी आप ही देते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में यात्रा कर रहा है। बीच-बीच में अकारण खिलखिला कर हँस पड़ता है। फिर चुप हो जाता है। आसपास के लोग चौकन्ने हो गये हैं कि आदमी कुछ अजीब है। कोई कारण दिखायी नहीं पड़ता। खाली बैठा है, आंखें बन्द किये है। फिर एकदम से खिलखिला कर हँसता है। फिर चुप हो जाता है। सम्हलकर फिर बैठ जाता है। आखिर नहीं रहा गया, जिज्ञासा बढ़ी, एक आदमी ने हिम्मत की, जरा हिलाया और कहा, महानुभाव! मामला क्या है, अचानक खिलखिला पड़ते हैं? नसरुद्दीन ने कहा, "बाधा मत डालो (आई ऐम टेलिंग जोक्स टु मायसेल्फ) मैं अपने आपसे जरा मजाक की कुछ बातें कर रहा हूं।" फिर उसने आंख बन्द कर ली, फिर वह बीच-बीच में खिलखिलाकर हँसता रहा। फिर कभी-कभी ऐसा भी होता, हंसता तो नहीं, लेकिन ऐसा झिड़कता हि: हि:। आखिर फिर उनकी जिज्ञासा बढ़ी कि बात क्या है। फिर उससे पूछा बगल के आदमी ने कि, महानुभाव, हंसते थे ठीक था, यह कोई चीज झिड़क देते हैं बीच में। तो उसने कहा, सम टोल्ड ओल्ड जोक। सुन चुके, कई दफा कह चुके, कई दफा वह मजाक बीच में आ जाती है।

पूरे समय हमारे भीतर भी यही चल रहा है। अकेले नहीं हैं हम, अकेले

होकर भी । अपने को बांट लेते हैं । बड़ा मजा है । बांट-बांट कर बातचीत चलती रहती है । जरा इस भीतर की चर्चा पर ख्याल करना । ऋषि कहता है कि इतना अकेला हो जाता है, इतना अकेला कि अपने से भी बात नहीं हो सकती । अब तो आनन्द ही वर्या है । अब तो आनन्द ही भीतर स्पंदित होता रहता है । **कोई नहीं बचा । आनंद अकेला बच गया ।** वही नृत्य करता है, वही नाचता है । बस वही गोष्ठी है ।

अकल्पित भिक्षाशी । यह बहुत जरूरी बात है, समझने जैसी । **संन्यासी जो है वह परमात्मा पर छोड़कर जीता है अब ।** योजना करके नहीं जीता । अनप्लांड, अनायोजित है उसका जीवन । सुबह उठता है, भूख लगती है तो भिक्षा मांगने निकल जाता है । यह भी पता नहीं कि भिक्षा मिलेगी, यह भी पता नहीं कि भिक्षा में क्या मिलेगा, यह भी पता नहीं, कौन देगा ! अकल्पित है सब । उसकी कोई कल्पना भी नहीं करता । अगर कल्पना भी करे तो वह संन्यासी की भिक्षा न रही । **अगर वह सुबह से यह भी सोच ले कि आज फलां चीज खाने में मिल जाय, तो वह भिक्षा न रही फिर संन्यासी की । वह भिखारी की भिक्षा हो गयी ।** संन्यासी के लिए सब अकल्पित है । भूख लगती है, निकल पड़ता है । किसी के द्वार पर खड़ा हो जाता है । कोई दे देता है ठीक, अन्यथा आगे बढ़ जाता है । जो दे देता है ठीक । जो मिल जाता है, ले लेता है । स्वीकार कर लेता है । न कोई कल्पना है, न कोई योजना । नहीं, पहले से खबर भी नहीं देता कि कल आपके घर भोजन करने आऊंगा, क्योंकि अगर ऐसी खबर दे तो वह आयोजित हो जायेगी । अनायोजित जीता है । मानना यह है कि यदि अस्तित्व को जिलाना है तो जिलायेगा । हम अपनी तरफ से मौन हैं ।

मुहम्मद सांझ को जो भी उन्हें मिलता था, उसे बंटवा देते थे । दिन भर लोग चढ़ा जाते, भेंट दे जाते । उन्हें वह सांझ तक बांट देते । फिर भिखारी हो जाते । **रात भिखारी ही सोते ।** सुबह फिर कोई दे जाता । एक बार मुहम्मद बीमार थे, तो उनकी पत्नी ने सोचा महम्मद को रात दवा की जरूरत पड़ सकती है, वैद्य बुलाना पड़ सकता है, तो पांच दीनार, पांच रुपये छिपा कर रख लिये । आधी रात महम्मद करवट बदलने लगे और मुहम्मद ने अपनी पत्नी से कहा, "मुझे ऐसा लगता है कि इस मरते क्षण में मैं भिखारी नहीं हूं ।"

पत्नी तो बहुत घबड़ा गयी । उसने कहा, आपको, कैसे पता चला । मुहम्मद ने कहा, जिन्दगी भर का भिखारी, रात बिना कुछ के सोया हूं सदा । आदत बिगड़ गयी। लगता है घर में आज कुछ बचा हुआ है । तू निकाल ला, उसे बांट दे । अन्यथा मैं

परमात्मा के सामने क्या जवाब दूंगा कि आखिरी दिन भरोसा खो दिया ? और जिसने जिन्दगी भर बचाया वह रात को वैद्य नहीं भेज सकता था और जिसने जिन्दगी भर भोजन दिया वह रात को दवा नहीं दे सकता था । आखिरी वक्त मुझे परेशानी में मत डाल । अब मरने के वक्त जब मैं उसके सामने जाऊंगा तो क्या मुंह लेकर जाऊंगा ? वह मझसे पूछेगा, मझे छोड़कर पांच रुपये पर भरोसा किया, तो मैं तुझे कमजोर और पांच रुपये ज्यादा ताकतवर मालूम पड़े । जब जरूरत न थी तब मैं तुझे सहयोगी था लगता था और जब जरूरत पड़ी तो रुपया सहयोगी हुआ? वह निकाल ले ।" पत्नी घबड़ा कर रुपये बाहर निकाल लायी । महम्मद ने कहा, जा बाहर किसी को दे आ ।

बड़ी हैरान हुई पत्नी कि सामने एक भिखारी खड़ा है । उस भिखारी ने कहा, मैं तो सोचता था, बहुत जरूरत पड़ गयी, साथी मेरा बीमार पड़ा है और दवा की जरूरत है । तो मैं सोचता था, आधी रात कौन देगा ? अपने आप दरवाजा खुल गया और यह पांच रुपये तू दे रही है ! मुहम्मद ने अपनी पत्नी को कहा, "देख, उसके रास्ते अनूठे हैं । जिसको जरूरत थी उसको मिल गयी और जिसने बचाया उसके हाथ से जा रही है ।" और जैसे ही वे रुपये दे दिये गये, मुहम्मद ने चादर ओढ़ ली और अपनी पत्नी से कहा, अब मैं निश्चित मर सकता हूं । और चादर ओढ़ कर तत्क्षण उनकी श्वांस निकल गयी । जो जानते हैं वे कहते हैं, वह श्वांस अटकी ही इसलिए रही । वह पांच रूपये बहुत भारी पड़े । वह बहुत वजनी थे ।

अकल्पित भिक्षाशी । संन्यासी कल्पना नहीं करता है । भिक्षा की ही नहीं, किसी चीज की कल्पना नहीं करता । किसी चीज की योजना नहीं बनाकर चलता । यह मिल जाय, ऐसा कोई सवाल नहीं है । जो मिल जाय उसके लिए धन्यवाद और जो न मिले उसके लिए उतना ही धन्यवाद । इसका अर्थ है कि अपने पर नहीं जीता, परमात्मा पर छोड़कर जीता है । **परमात्मा जहां ले जाय, वहीं चला जाता है । दुख में तो दुख में, सुख में तो सुख में ।** महलों में तो महलों में सही और झोपड़ों में तो झोपड़ों में सही । परमात्मा जहां ले जाय उसके हाथ में अपने को छोड़ देता है ।

छोटे बच्चे को देखा है कभी ? बाप का हाथ पकड़ कर रास्ते पर चलता है तो फिर बिल्कुल फिक्र नहीं करता वह कि कहां जा रहा है, कहां ले जाया जा रहा है ? जब बाप के हाथ में हाथ है तो बात खत्म हो गयी । अल्पित भिक्षाशी । जब परमात्मा के हाथ में छोड़ दिया सब तो अब बात खत्म हो गयी । वह जो करवाये वही ठीक है । उसी के लिए मन राजी है, उसकी स्वीकृति है ।

हंस जैसा उसका आचार है । हंस जैसा उसका आचरण है । हंस के आचरण की दो खूबियां हैं, वह ख्याल में ले लें तो वह संन्यासी के आचरण की खूबियां हैं ।

एक तो मैंने आपसे पीछे कहा कि हंस की यह कल्पित क्षमता है, वैज्ञानिक न भी हो, काव्य क्षमता है कि वह पानी और दूध को अलग कर लेता है । असार और सार को अलग कर लेता है । वह जो विवेक है संन्यासी का जागा हुआ, वह तलवार की तरह असार को और सार को काट कर अलग कर देता है, जस्ट लाइक ए सोर्ड (Sword) तलवार की तरह दो टुकड़े में कर देता है ।

हंस की एक दूसरी क्षमता है, वह भी काव्य क्षमता है, वह है कि **हंस मोती के अतिरिक्त और कुछ आहार नहीं लेता** । मर जाय, मोती ही चनता है । तो संन्यासी भी, मर जाय, पदार्थ नहीं चुनता, परमात्मा ही चुनता है । हर हालत में, हर हालत में चुनाव उसका मोतियों का है । ककंड़ पत्थरों का नहीं । मौत के लिए राजी हो जायेगा, लेकिन कंकड़ पत्थरों के लिए राजी नहीं होगा । श्रेष्ठ का ही उसका चुनाव है । शुभ का, सुन्दर का, सत्य का ही उसका चुनाव है । **यह जो हंस की क्षमता है, यही संन्यासी का आचरण है ।**

और अंतिम, **सर्व प्राणियों के भीतर रहने वाला एक आत्म ही हंस है, इसको ही वे प्रतिपादित करते हैं ।** और जीवन से, शब्दों से, वाणी से, आचरण से एक ही बात वे प्रतिपादित करते हैं कि सब के भीतर जो बसा है वह ऐसा ही परमहंस है । सबके भीतर ऐसी ही आत्मा का आवास है । सबके भीतर ऐसी ही चेतना की धारा प्रवाहित हो रही है । जो जानते हैं उनके भीतर भी और जो नहीं जानते हैं उनके भीतर भी । जो अपने आप आंख बन्द किये खड़े हैं उनके भीतर भी वही परमात्मा है । जो द्वार बन्द किये हैं उनके भीतर भी, जो आंख खोलकर देखते हैं उनके भीतर भी । फर्क भीतर के परमात्मा का नहीं है, फर्क भीतर के परमात्मा से परिचित या अपरिचित होने का है । **परम ज्ञानी में और परम अज्ञानी में जो फर्क है वह स्वभाव का नहीं है, वह फर्क केवल बोध का है,** अवेयरनेस का है ।

मैं हूं, खीसे में हीरे पड़े हैं, और मुझे पता नहीं । आप हैं, आपके खीसे में हीरे पड़े हैं और आपको पता है । जहां तक सम्पदा का सम्बन्ध है, हम दोनों में कोई भी भेद नहीं है । लेकिन फिर भी मैं निर्धन रहूंगा क्योंकि मुझे अपनी सम्पदा का कोई पता ही नहीं है । और आप धनवान रहेंगे । क्योंकि आपको अपनी संपदा का पता है । और फिर भी सम्पदा मेरे पास उतनी ही है जितनी आपके पास है । लेकिन उस सम्पदा का क्या मूल्य, जिसका हमें पता ही न हो । उस तिजोड़ी का क्या मूल्य, यदि हमें मालूम ही न हो कि वह तिजोड़ी है । उस हीरे को क्या करियेगा,

जिसको हम पत्थर समझकर घर के एक कोने में डाल रखे हैं। पर इससे फर्क नहीं पड़ता। वह सम्पदा हमारी है।

ऋषि यही उपदेश करते हैं। यही वे समझाते रहते हैं-- अहर्निश, सब रूपों में, सब भांति। वे सब प्रकार से एक ही बात समझाते रहते हैं कि जो उनके भीतर है, वही तुम्हारे भीतर है। और सबके भीतर वही है। यह भरोसा एक बार आ जाय, यह ट्रस्ट एक बार आ जाय कि मेरे भीतर भी वही है तो शायद मैं छलांग लगाने के लिए तैयार हो जाऊं।

शायद यह स्मरण एक बार आ जाय कि वही मेरे भीतर भी है तो शायद मैं खोज पर निकल जाऊं। खोदने के लिए तैयार हो जाऊं। कोई कह दे कि वह खजाना मेरे घर के नीचे भी गड़ा है तो शायद मैं कुदाली उठा लूं। आलसी आदमी हूं, सोया पड़ा रहता हूं लेकिन खजाने की याददाश्त कोई दिला दे तो शायद मैं आलस्य में पड़ा रहने वाला, सोने वाला भी उठ जाऊं। दो चार हाथ चलाऊं तो शायद नीचे के घड़ों की आवाज आने लगे। और थोड़ा आगे बढ़ूं तो शायद घड़े मिल जायं। घड़ों को फोड़ूं तो शायद खजाना मिल जाय।

तो ऋषि निरन्तर कहते रहते हैं। उनकी श्वांस श्वांस एक ही बात बन जाती है कि वे याद दिलाते रहें लोगों को **कि वह परमहंस सबके भीतर छिपा हुआ है।**

(साधना शिविर, माऊन्ट आबू में रात्रि, दिनांक २७ सितम्बर, १९७१ को निर्वाण उपनिषद् पर भगवान् श्री रजनीश द्वारा दिया गया एक प्रवचन।)

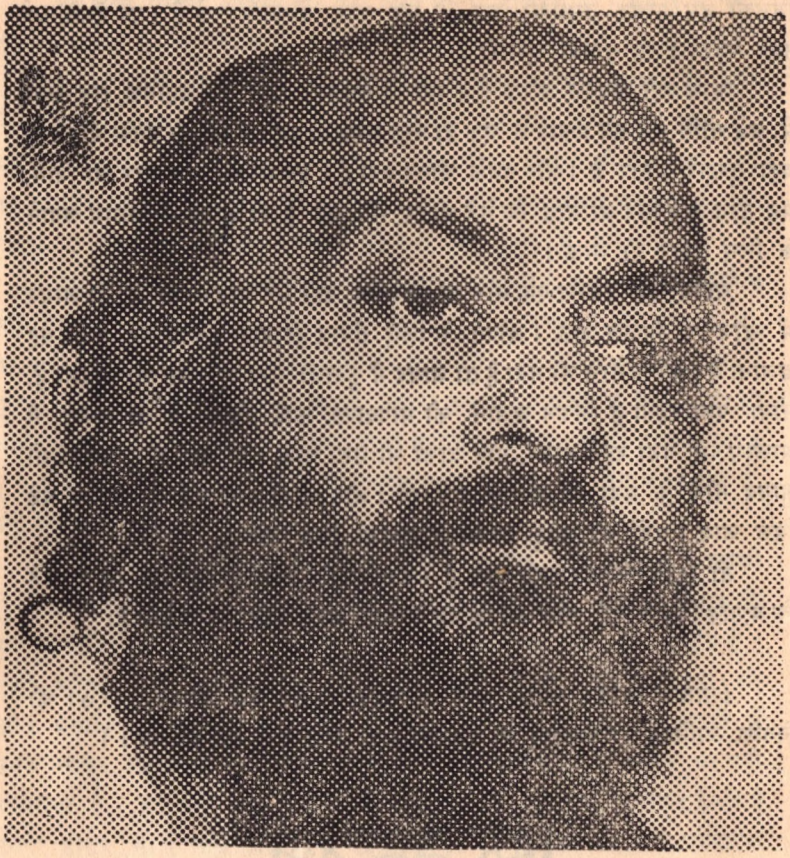

आप भगवान हैं ?

(१) भगवान और अतीन्द्रिय.
(२) भगवान और अमीर
(३) भगवान और राजनीति
(४) भगवान और भारत की जनता
(५) भगवान और तंत्र-विज्ञान

(श्री कान्ती भट्ट की भगवान श्री से प्रश्नोत्तर–वार्ता, दिनांक १६–४–७२, स्थान : वुडलैंड, बंबई)

संकलन : मा कृष्ण करुणा

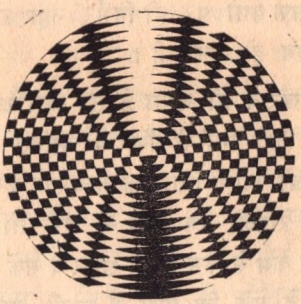

१ भगवान और अतीन्द्रिय

प्रश्न– १ :–जीन डिक्सन नाम की भविष्यवेत्ता जब पहले चंद्रयात्री आकाश में जाते थे तब उनकी शारीरिक स्थिति महसूस कर सकती थी। चंद्र पर कैसा वातावरण है और चंद्रयात्री की शारीरिक स्थिति कैसी है वह आप महसूस कर सकते हैं?

भगवान श्री :

पहला प्रश्न जो है जीन डिक्सन के बाबत: संभव है यह बात। क्योंकि मन की क्षमता है कि समय और दूरी को पार करके अनभव किया जा सके। लेकिन मन की ही क्षमता है, आत्मा से उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

तो तीन बातें समझ लें, **एक तो शरीर की क्षमताएं हैं**– वे विकसित की जाएं तो एक आदमी राममूर्ति बन जाएगा। फेफड़ा राममूर्ति से भी आप सब का भिन्न नहीं। सिर्फ फेफड़ों में जो छिपी हुई शक्तियां है उनको अगर पूरी तरह ट्रेन्ड किया जाए तो राममूर्ति अपनी छाती पर हाथी को खड़ा कर लेता है––छाती आपके पास भी वही है लेकिन छाती की कितनी संभावना है उसका अभ्यास आपके पास नहीं है।

ठीक ऐसे ही मन की क्षमताएं हैं। मन की क्षमताओं का भी अभ्यास किया जाए तो आप बहुत से चमत्कारी परिणाम उपलब्ध कर ले सकते हैं। वे सब क्षमताएं आपके मन की हैं, लेकिन उनके लिए अभ्यास की जरूरत है। तो अब तो यह वैज्ञानिक सत्य भी है कि दूरी, स्थान की या समय की, मन के लिए बाधा नहीं है। और अभी रूस और अमरीका में, रूमानिया में, यूगोस्लाविया में, सारे मुल्कों में, वैज्ञानिक शोध चल रही है और वैज्ञानिक शोध के लिए बड़े से बड़ा कारण यही रहा है कि जैसे ही हम अंतरिक्ष में

आदमी को भेजेंगे तो सिर्फ यंत्रों पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता। क्योंकि यंत्र किसी भी क्षण खराब हो सकते हैं।

अगर रेडिओ यंत्र खराब हो जाता है तो अंतरिक्ष यात्रियों की हमें फिर कोई भी खबर कभी भी नहीं मिलेगी कि वे जीवित हैं, मर गये, कहां गए, क्या हुआ ? वे अनंत में खो जाएंगे। तो एक अल्टरनेट कम्यूनिकेशन की जरूरत है कि किसी भी क्षण अगर रेडिओ यंत्र काम न करें तो हमारे पास कुछ और व्यवस्था होनी चाहिए जो कम से कम इतनी खबर दे सके कि रेडिओ यंत्र खराब हो गए। इतनी खबर दे सके कि कहां हैं यात्री, क्या घटित हो रहा है।

इसलिए रूस और अमरीका दोनों के वैज्ञानिक मन की टेलिपैथिक क्षमता पर बहुत खोज में लगे हैं। पहली दफे टेलिपैथी के प्रति उत्सुकता, मन की टेलिपैथिक क्षमता के बाबत बढ़ी है। क्योंकि अब वही एक अल्टरनेट (वैकल्पिक) इंतजाम हो सकता है क्योंकि कोई भी दूसरा इंतजाम यंत्र का ही होगा और वह सभी रेडिओ यंत्रों पर निर्भर होगा। अगर रेडियो यंत्र खराब हो जाए तो खबर संचार की उसमें कोई व्यवस्था नहीं है।

तो क्या हम मन से खबर भेज सकते हैं बिना किसी यंत्र के, इस चिन्ता में वे लीन हैं और जो परिणाम आये हैं वे बहुत विधायक हैं। खबरें भेजी जा सकती हैं और बड़े आश्चर्य की बात है कि रेडिओ यंत्र से ज्यादा सुनिश्चित खबरें भेजी जा सकती हैं और रेडिओ यंत्रों की बजाय ज्यादा निर्भर रहा जा सकता है। लेकिन तब व्यक्तियों को ट्रेन्ड करने की बात है, अक्सर तो ऐसा होता है कि कुछ लोग तो सामूहिक रूप से विकसित हो जाते हैं जैसे जीन डिक्सन। सामूहिक विकास है। अचानक किसी क्षण में कोई जागरुक हो जाता है जिसके पास क्षमता है। लेकिन इसपर निर्भर नहीं रहा जा सकता है।

तो रूस ने ऐसे प्रशिक्षण के काम किये और ऐसे लोगों को प्रशिक्षित किया जिनको जीवन में कभी ख्याल ही न था कि उनके पास भी ऐसी क्षमता हो सकती थी। और अब दूर संचार भेजा जा सकता है और रेडिओ यंत्र अगर ९० प्रतिशत परिणाम देता है तो ५६ प्रतिशत परिणाम टेलिपैथिक दे देता है।

तो जीन डिक्सन जो भी कर रही है वह बिलकुल संभव है। उसमें कोई अड़चन नहीं है। इस तरह के इस समय पृथ्वी पर कम से कम पचास लोग हैं जो बहुत तरह की मन की संभावनाओं से भरे हुए हैं। जैसे अमरीका में ही और व्यक्ति हैं। एक व्यक्ति था जो न केवल मन से संचालित–संबंधित

हो जाता था, बल्कि आंखों में चित्र भी उपलब्ध कर लेता और उसकी आंखों से फोटोग्राफ्स भी लिए गए हैं। अगर वह अमरीका में बैठकर ताजमहल के बाबत चिन्तन करता है तो ताजमहल का चित्र उसकी आंख में ही चित्रित हो जाता है और वह चित्र आंख में ही नहीं आ जाता है उसके फोटोग्राफिक चित्र भी लिए जा सकते हैं। यह भी मन की दूसरी क्षमता है। **अगर मन रेडिओ की तरह काम कर सकता है तो टी. वी. की तरह भी काम कर सकता है।**

लेकिन मेरा कोई सम्बन्ध न तो शरीर की शक्तियों से है और न मन की। और मैं मानता हूं कि वे दोनों ही भौतिक हैं और उनका कोई अध्यात्मिक मूल्य नहीं है। चमत्कार घटित हो सकते हैं, लेकिन वे चमत्कार इसीलिए मालूम पड़ते हैं क्योंकि उसके भीतरी नियमों का हमें कोई पता नहीं। अन्यथा इस जगत में कोई भी चमत्कार नहीं है और न चमत्कार हो सकता है। चमत्कार का एक ही अर्थ है कि उसके भीतर काम करनेवाले नियम अभी तक ज्ञान के क्षेत्र में प्रकट नहीं हो सके हैं।

चमत्कार का अर्थ है हमारा अज्ञान, चमत्कार का और कोई भी अर्थ नहीं। जिस दिन भी नियम और व्यवस्था ज्ञात हो जाते हैं उस दिन चमत्कार नहीं रह जाता है। और मैं मानता हूं कि रूस और अमरीका दोनों में, विशेषकर रूस में... (क्योंकि रूस की तो कोई धारणा ही नहीं है कि भीतर कोई चमत्कारी संभावनाएं है। सभी कुछ नियमबद्ध और प्राकृतिक है।) तो बहुत शीघ्र ही सारी चीजों के नियम ख्याल आ जाएंगे और मेरी समझ यही है कि इस सदी के पूरे होते-होते जैसे हम और चीजों के लिए प्रशिक्षण देते हैं, ठीक वैसे हम टेलिपैथिक प्रशिक्षण दे सकेंगे। देना ही पड़ेगा। क्योंकि अंतरिक्ष की यात्रा के बाद साधारण आदमी के पास जो मन है उससे काम नहीं चलेगा। **जब हम अनंत के विस्तार में प्रवेश कर रहे हैं तो हमारे पास अनंत में प्रवेश करने योग्य सक्षम मन भी चाहिए।** सिर्फ यंत्रों से काम नहीं होगा।

तो मेरे लिए यह और भी मूल्यवान है कि चांद पर आदमी जा रहा है, मंगल पर जाएगा। चांद और मंगल का मेरे लिए मूल्य नहीं है। मेरे लिए मूल्य है उसका जिसे चांद और मंगल पर जाने के लिए चेतना के भी नये आयामों में प्रवेश करना पड़ेगा। जैसे ही हम तकनीकी दृष्टि से एक चीज में आगे बढ़ते हैं वैसे ही हमें चेतना में भी उतना ही आगे बढ़ना पड़ता है।

अंततः तकनीक में ज्यादा आगे हम नहीं जा सकते। जैसे एटम-बम है। मै मानता हूं कि यह बहुत ही सुखद खोज है क्योंकि एटम-बम के बाद

अब आदमी को पुराने ढंग की बेवफूफी छोड़नी पड़ेगी या वह बचेगा ही नहीं। एटम बम के साथ ही आपको एक जागतिक चेतना विकसित करनी पड़ेगी। राष्ट्रीय चेतना अब काम नहीं कर सकती क्योंकि राष्ट्रीय चेतना जितने साधनों से काम करती थी वैसे साधन अब दो कौड़ी के हो गए। और अब जो साधन आपके हाथ में हैं उसके लिए पूरी पृथ्वी उपयोगी है। अब आप छोटे मन से काम नहीं कर सकते। या आदमी को मिटना पड़ेगा और आदमी मिटने को कभी राजी नहीं है। इसलिए बदलने को सदा राजी हो जाता है।

लेकिन मुझे प्रयोजन नहीं, मेरी उत्सुकता भी नहीं। मुझे कोई अर्थ भी नहीं कि चांद पर क्या हो रहा है, कि कहीं क्या हो रहा है। **मुझे एक ही प्रयोजन और एक ही उत्सुकता है कि आदमी के अंतरतम में क्या हो रहा है ?**

२ भगवान और अमीर

प्रश्न–२ :–भारत में आज मुश्किल से दो-तीन मौलिक चिंतक हैं। मेरी दृष्टि में आप उनमें प्रथम हैं ––फिर भी आपका चिंतन आम जनता तक क्यों नहीं पहुंचता ? और ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी चिन्ता और चिन्तन सिर्फ धनिक वर्ग के लिए ही है– कृपया इस पर प्रकाश डालें।

भगवान श्री:

इसमें थोड़ी दूरी तक सच्चाई है। एक तो मैं मानता नहीं कि चिन्तन जनता तक पहुंच सकता है। जितना गहन चिन्तन होगा उतना थोड़े लोगों तक पहुंचेगा, जितना साधारण चिन्तन होगा उतने साधारण लोगों तक पहुंचेगा। क्योंकि पहुंचने में चिन्तन ही मूल्यवान नहीं होता। वही अर्थवान नहीं होता, जिस तक पहुंचाना है वह भी अर्थवान है। तो अगर चिन्तन में बहुत गहराइयां हैं तो आम जनता तक उसे नहीं पहुंचाया जा सकता है। आम जनता का मतलब ही यही है की जो बहुत सतह पर जी रही है और जिसे गहराई तक चिन्तन नहीं पहुंचाया जा सकता।

लेकिन मैं मानता भी नहीं कि पहुंचाना जरूरी है। जैसे आप चिन्तन करते हैं तो आपके मस्तिष्क में होता है, पैरों तक नहीं पहुंचता, पहुंचने की जरूरत भी नहीं। अगर मस्तिष्क सक्रिय हो जाता है तो पैर उसका अनुकरण

करते हैं । जिसको हम आम जनता कहते हैं वह कभी भी किसी चीज में अग्रणी नहीं होती है। हो भी नहीं सकती ।

समाज के पास भी एक मस्तिष्क है, वही अग्रणी होता है, शेष समाज पीछे चलता है । जिन क्रान्तियों को हम जनता की क्रान्तियां कहते हैं वे भी व्यक्तियों से अनुप्राणित होती हैं। कोई मार्क्स का चिन्तन जनता का चिन्तन नहीं है। मार्क्स तो बैठकर ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में चौबीस घंटे मेहनत में लगा हुआ है। और मार्क्स जनता तक अपने जीवन में कुछ भी पहुंचा भी नहीं सका । पहुंचा भी नहीं सकता। लेकिन इन्टेलिजेन्सिया, एक समझदार वर्ग को उसने पकड़ लिया । वहां तक बात पहुंच गई, वह मस्तिष्क है । एक दफा वह अनुप्राणित होती है, चल पड़ती है,तो जनता पीछे चलती है । मेरे लिए जनता का बहुत मूल्य नहीं है। मूल्य ही नहीं है मन में । मेरे लिए मूल्य ही समाज के भीतर जो बुद्धि है, उसका है । अगर उसे अनुप्राणित किया जा सकता है तो जनता पीछे चल पड़ती है और जनता को सीधा अनुप्राणित करने का कोई भी उपाय नहीं है।

दूसरी बात, यह भी थोड़ी दूर तक सच है कि धनिक वर्ग मेरे निकट इकट्ठा हो जाता है । इसे भी थोड़ा समझ लेना चाहिए। जीवन बहुत संयुक्त है। धन एकांगी घटना नहीं । जहां धन है वहां शिक्षा भी ज्यादा होगी । जहां धन है वहां समझ भी ज्यादा होगी। शिक्षा भी ज्यादा होगी, वहां सुविधा भी ज्यादा होगी, जहां धन है वहां समझने के लिए आकांक्षा भी ज्यादा होगी। उसका कारण है, क्योंकि समझ को मैं लक्जरी (विलास) मानता हूं। समझ गरीब आदमी का काम नहीं । ही कैन नाट एफॉर्ड इट- (He can not afford it)

समझ जो है जीवन की सबसे ज्यादा विलासपूर्ण अवस्था है । । तो समझ का जो फूल है वह विलास में खिलता है। बुद्ध हों या महावीर हों, वे सब विलास के फूल थे। अगर एथेन्स में प्लेटो, सोक्रेटीज और अरस्तु पैदा हुए तो वे उस वक्त पैदा हुए जब एथेन्स विलास के शिखर पर था। अगर भारत ने भी दुनिया को श्रेष्ठ चिन्तन दिया तो वह उस समय दरिद्र नहीं था। स्वर्ण शिखर पर इसकी ऊंचाई थी । **आज तक तो कोई दरिद्र समाज कोई गहन चिन्तन नहीं दे सका।** दे नहीं सकता।

समृद्धि का मतलब इतना ही है कि अब शरीर की आम जरूरतों से छुटकारा हुआ । अब आपकी चेतना किन्हीं भिन्न आयामों में प्रवेश करने

के लिए छूटती है । विलास का मतलब ही इतना है कि अब आप कला में, संगीत में, साहित्य में, धर्म में, ध्यान में, रस ले सकते हैं। गरीब आदमी का मतलब क्या है ? गरीब आदमी का मतलब इतना है कि अभी उसकी शरीर की जरूरतें भी पूरी करने की सुविधा उसके पास नहीं है। जिसके पास शरीर की जरूरतें पूरी करने की सुविधा नहीं है, उसके पास मन की जरूरतें पैदा भी नहीं होतीं । और जिसके पास मन की जरूरतें पूरी करने की सुविधा नहीं है उसके पास आत्मा की जरूरतें पैदा नहीं होतीं ।

ये जरूरतें क्रमिक हैं । सबसे पहले जो जरूरी है वह शरीर है । **जो शरीर की सुविधा जुटा पाता है। वह मन के आयाम में अतृप्त होने लगता है और जब मन की सुविधा जुट जाती है, तो आदमी आत्मा के आयाम में अतृप्त होता है ।** शरीर की सुविधा न जुटती हो तो आत्मा की बातचीत असंभव है, या झूठी है, या बहाना है। और उसमें बहुत गहराई नहीं हो सकती ।

तो मेरे मन में गरीब का मतलब ही यह है कि जो गहन चिन्तन में प्रवेश नहीं कर सकता। यह तुलनात्मक कह रहा हूं । अपवाद व्यक्ति हो सकते हैं। उनका मैं हिसाब नहीं रखता हूं । विलास के साथ ही आदमी को सुविधा मिलती है कि अब वह कुछ और भी कर सकता है, चित्र पेन्ट करे, वीणा बजाये, ध्यान करे इसका यह मतबल नहीं है कि ये सब चीजें फिजूल हैं। अगर हम एक पौधा लगाते हैं तो पहले तो पौधों में जड़ें होती हैं फूल तो आखीर में आता है और फूल तभी आता है जब पौधे के पास सुपरफ्लुअस एनर्जी हो । नहीं तो फूल नहीं आएगा । अगर पौधा अपने जीवन को ही बचाने में लगा हुआ है तो फूल नहीं आयेगा । फूल तो आयेगा तभी जब जीवन के बाद शक्ति बचती है ।

तो धर्म मेरे लिए फूल है। तो मेरी तो मान्यता ही यही है कि **धार्मिक समाज हो ही तब सकता है जब वह समृद्ध हो । गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता** । और गरीब समाज के लिए मेरी स्वीकृति है कि मार्क्स ठीक कहता है कि धर्म अफीम का नशा है। धर्म, गरीब समाज में अफीम का नशा है यह मार्क्स ठीक कहता यह मेरे हिसाब से और कारण से।

यह ठीक वैसा ही नशा है जैसे भूखा आदमी वीणा बजाने में अपने को भुला रहा हो । भुला तो नहीं सकता, मिटा तो नहीं सकता, थोड़ी बहुत देर के लिए आनंदित हो सकता है, लीन हो सकता है। भूख मिटेगी नहीं, और

बढ़ेगी ।

एक मजे की बात है कि जब भी कोई समाज गरीब होता है तभी वह धर्म में उत्सुक होता है, लेकिन उसकी उत्सुकता समझने जाएं, और मैं अनभव से कहता हूं, गरीब आदमी मेरे पास आता है वह कहता है कि मन में बड़ी अशांति है । लेकिन वह गलत शद्वों का प्रयोग करता है । जब मैं उससे पूछता हूं कि क्या अशांति है, तो वह कहता है कि मेरी लड़की की शादी नहीं हुई। वह कहता है कि लड़के को नौकरी नहीं मिली है। वह कहता है पत्नी बीमार है। इनका मन से कोई संबंन्ध नहीं है। यह सब शरीर के तल की अशान्तियाँ हैं जिनको वह मन की अशांति कह रहा है ।

एक अमीर आदमी मेरे पास आता है वह कहता है कि मन में बड़ी अशांति है, उसकी अशान्ति बिलकुल और है । लड़के की शादी हो गई है, लड़के नौकरी पर हैं सब, कमाई है सबकी । सब ठीक है। जहां गरीब आदमी का सब गलत है, वहां उसका सब ठीक है और फिर उसको अनुभव हो रहा है कि कुछ भी ठीक नहीं है । तो यह बिलकुल दूसरे तल की अशांति है । यह मानसिक है ।

इसलिए यह मजे की बात है कि गरीब आदमी और गरीब समाज में मानसिक बीमारियां नहीं होती हैं । हो नहीं सकतीं। अमीर समाज में मानसिक बीमारियां शुरू होती हैं। गरीब समाज की बीमारियां शारीरिक होती है, **अमीर समाज की बीमारियां मानसिक होती हैं और जब अमीरी आखिरी दशा में पहुंचती है तब आत्मिक बीमारियां शुरू होती हैं** । और इलाज तो तभी किया जा सकता है जब बीमारी हो और मेरी तकलीफ यह है कि आपका मन बीमार नहीं ।

मैं आपको नौकरी नहीं दिला सकता हूं । मैं आपकी लड़की की शादी नहीं करवा सकता । इससे मेरा कोई लेना–देना नहीं है । मैं आपके मन को शांत होने का उपाय जरूर बता सकता हूं, लेकिन आपका मन अभी अशांत नहीं है और जब आप कहते हैं कि मेरा मन अशांत है तब आप गलत शद्व का प्रयोग कर रहे हैं। आपको अभी पता ही नहीं है कि मन की अशांति क्या है ? मन की अशांति शुरू ही तब होती है जब शरीर की सब अशांति समाप्त हो जाए, नहीं तो मन की अशांति शुरू नहीं होती ।

तो मेरी तकलीफ यह है कि गरीब आदमी मेरे पास आता है तो मैं अनुभव करता हूं कि उसके लिए मैं कुछ भी नहीं कर सकता । कर नहीं

सकने का कारण है कि जो वह कह रहा है वह उसकी अशांति नहीं और जो मैं कर सकता हूं उससे उसका कोई तालमेल नहीं। मैं एक अमीर समाज के पक्ष में हूं। मैं एक गरीब समाज के बिलकुल विरोध में हूं और जब मैं कहता हूं कि गरीब समाज के बिलकुल विरोध में हूं तो मेरा विरोध समाजवादी का विरोध नहीं है। समाजवादी का विरोध यह है कि हम अमीर को विसर्जित कर दें। गरीब को बांट दे। मैं मानता हूं कि यह समाज में और गरीबी ला देगा।

मैं अमीर समाज के पक्ष में हूं ठीक पूंजीवादी अर्थ में। मैं चाहता हूं कि गरीब-गरीब न रह जाए, अमीर हो। और इसलिए चाहता हूं कि एक दिन वह भी मानसिक अशांति का मजा ले सके क्योंकि जो मानसिक अशांति का मजा लेगा वही मानसिक शांति का मजा ले सकता है। और इसलिए चाहता हूं कि एक दिन वह भी आत्मिक रूप से पीड़ित हो सके। **क्योंकि जो आत्मिक रूप से पीड़ित होगा वही आत्मसाक्षात्कार की तरफ जा सकेगा।** तो मेरी तकलीफ क्या है? मेरी तकलीफ है कि पीड़ा शारीरिक है, उस शारीरिक पीड़ा को शरीर के तल पर मिटाया जाना चाहिए। उसको मन के तल पर मिटाने का कोई मतलब नहीं होता। उस आदमी को टेक्नॉलॉजी की जरूरत है, धन की जरूरत है, मकान की जरूरत है।

और मेरा मानना यह है कि अब तक वह गरीब इसलिए बना हुआ है कि इस जरूरत को वह ठीक से समझ नहीं रहा है। वह इस वक्त आध्यात्मिक और मानसिक बातों में समय खराब कर रहा है। गरीब आदमी को धर्म की बात करना बिलकुल अफीम देना है। उसे टेक्नॉलॉजी की बात कहनी चाहिए, उसको बताया जाना चाहिए कि धन ज्यादा कैसे पैदा करो।

अब रह गया सवाल यह कि क्या मैं गरीब आदमी को बताऊं की वह धन ज्यादा कैसे पैदा करे! क्योंकि मन कैसे उसका शांत हो, यह उसका अभी सवाल नहीं, इसके जवाब का कोई प्रश्न नहीं उठता है। क्या मैं उसको बताऊं की धन कैसे ज्यादा पैदा करो? क्या मैं उसको बताऊं कि वह कैसे समृद्ध हो? क्या मैं उसको बताऊं कि वह कैसे दुकान चलाए? इसमें भी मेरी कठिनाई है क्योंकि मेरा अनभव यह है कि आदमी जैसा है उसको ज्यादा धन दे दो, उसको बड़ा मकान दे दो, तो बड़े मजे की घटना घटती है कि उसके पुराने दुख तो मिट जाते हैं, लेकिन नये दुख शुरू हो जाते हैं। दुख नहीं मिटते सिर्फ नये ढँग के दुख शुरू हो जाते हैं।

अगर मनुष्य जाति का पूरा इतिहास हम देख तो हम सदा इस आशा में

रहे हैं कि यह चीज हल हो जाए तो सब हल हो जाए, फिर वह हल हो जाती है और कुछ हल नहीं होता । हजारों बार ऐसे मौके आये कि हमें लगा कि यह हल हो जाए तो सब हल हो जाएगा । किसी दिन भारत गुलाम था तो सारे मुल्क के लोगों को लगता था कि भारत स्वतंत्र हो जाए तो सब हल हो जाएगा– जैसे सब हल स्वतंत्रता में ही रखा हुआ है। फिर हम स्वतंत्र हो गए, कुछ हल नहीं हुआ । वह बात भी हम भूल गए कि हम सोचते थे कि सब हल हो जाएगा । अब नये सवाल खड़े हो गए ।

अमरीका पहली दफा ठीक से समृद्ध हो गया है । तो अमरीका के ढ़ाई तीन सौ वर्षों के जितने विचारशील लोग थे सबकी चेष्टा का फल है है कि अमरीका समृद्ध हो गया । और उन सब ने सोचा था कि समृद्धि से सब कुछ मिलेगा, वह कुछ भी नहीं मिला । और उनमें से एक ने भी वह नहीं सोचा था जो मिला । जो मिला है, उनमें से एक ने भी नहीं सोचा था कि यह होगा । न जेफर्सन ने सोचा, न लिंकन ने सोचा, न इमर्सन ने सोचा कि हिप्पी पैदा होंगे ।

तीन सौ वर्ष के अमरीका के चिन्तकों ने सोचा कि सबको सार्वजनिक शिक्षा होनी चाहिए । सब शिक्षित हो जाएंगे तो सब ठीक हो जाएगा और सब शिक्षित हो गए तब पता चला कि ठीक कुछ भी नहीं हुआ, बल्कि यह शिक्षित आदमी नये उपद्रव पैदा करते हैं, जो अशिक्षित ने कभी नहीं पैदा किये । आज इंग्लड में, फ्रांस में, स्वीडेन में, अमरीका में हिन्दू-मसलमान का झगड़ा नहीं है। ईसाई-मुसलमान का झगड़ा नहीं है, प्रोटेस्टंट-कैथोलिक का झगड़ा नहीं है । झगड़े पुराने पड़ गए । सारे लोग सोचते थे कि जिस दिन धर्मों में झगड़े नहीं रहेंगे उस दिन बड़ी शांति हो जाएगी । लेकिन बड़े बेहूदे और नये झगड़े खड़े हो गए ।

अभी मेरे पास दो संन्यासी आए थे इंग्लैड से । तो इंग्लैंड में दो ग्रुपवाले है, लम्बे बालवालों का ग्रुप और सिरघुटे बालवालों का । और झगड़े की कुल जमा फिलासॉफी इतनी है कि तुम्हारा सिर घुटा नहीं है । ये जो सिर घुटे युवक हैं, ये लम्बे बालवालों को मारेंगे, बाल काटेंगे, चोट करेंगे, उनके सामान मिटा देंगे । हत्याएं हो जाएंगी ।

ये लड़कों का जो संन्यास आश्रम था उन लोगों ने उसे लूट लिया और बड़ी हैरानी है, उन पर मुकदमें चलते हैं अदालतों में, तो अदालतों में जो उनके वक्तव्य हैं वे देखने लायक हैं। क्योंकि वे यह कहते हैं कि हमें

हिंसा में आनन्द आता है। कोई प्रयोजन नहीं है। वे कहते हैं कि काम-वासना हमारे लिए बोर्डम हो गई है क्योंकि सब स्वतंत्रता हो गई है। सब उपलब्ध है। अब सिर्फ एक हिंसा रही जिसमें हमें थोड़ी सी थ्रिल, कि किसी को छाती में अगर छुरा भोंक पाते हैं तो क्षण भर को हमें लगता है कि आनन्द मिल गया। इसके बाप-दादों ने पांच सौ साल में कुछ न समझा था कि जिस दिन हम इनको सारी सुविधा जुटा देंगे, और जिस दिन धन होगा, और जिस दिन शिक्षा होगी उस दिन ये लड़के हिंसा में ऐसा रस लेंगे।

हम सबको ख्याल है कि आदमी हिंसा इसलिए करता है कि उसके पास खाने को नहीं है। गलती है आपकी। हमारा ख्याल यह है कि आदमी इसलिए लड़ता है कि उसके पास एक सुन्दर स्त्री नहीं है, गलती है आपकी। आपको उस समाज का पता नहीं है जिसमें सबको सुन्दर स्त्री उपलब्ध है और धन उपलब्ध है और सब सुविधा उपलब्ध है। तब हिंसा आदमी बेकारण कर सकता है। इसका हमें ख्याल भी नहीं।

तो जैसा मैं देखता हूं, मेरा मानना यह है कि जैसा समाज है, समाज सदा दुखी रहेगा। एक मेरी धारणा है, जैसा समाज है सब दुखी रहेंगे, दुख के तल बदलेंगे। दुख के आयाम बदलेंगे, ढंग बदलेंगे, समाज सदा दुखी रहेगा। समाज कभी भी सुखी नहीं रह सकता, व्यक्ति सुखी हो सकता है और व्यक्ति के सुख का मतबल है कि उसको रूपान्तरण करना पड़ेगा तो वह सुखी हो सकेगा।

जैसा दो सौ वर्ष का चिन्तन है सारी दुनिया का तो उसके कारण बाहर है। तो दुख के कारण जहां मिट गए हैं वहां सुख आ जाना चाहिए। लेकिन वहां सुख नहीं आता। मेरी अपनी दृष्टि है कि दुख के कारण बाहर नहीं हैं और यह धर्म की सदा की दृष्टि है। लेकिन अब मैं मानता हूं कि इसके लिए वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हैं।

बुद्ध ने भी कहा है कि सुख बाहर के कारण पर निर्भर नहीं है। लेकिन बुद्ध इसके लिए प्रमाण नहीं दे सकते थे। लेकिन अब प्रमाण उपलब्ध है क्योंकि जिन समाजों में बाहर के सब कारण मिटा दिए गए हैं वहां दुख घना हो गया, है, कम नहीं हुआ है। **तो मेरे लिए मूल्यवान व्यक्ति है, समाज नहीं। यही मैं राजनीतिज्ञ और धार्मिक व्यक्ति की दृष्टि का अंतर मानता हूँ।** मेरे लिए तुम मूल्यवान हो, समाज नहीं। क्योंकि तुम भीतर जा सकते हो, समाज भीतर नहीं जा सकता। और अगर मैं कहता हूं कि समाज की

गरीबी मिटे तब मैं तुम्हारे भीतर जाने की यात्रा शुरू करूंगा, तो तुम भी मिट जाओगे, मैं भी मिट जाऊंगा और समाज तो चलता रहेगा ।

तो समाज के नाम पर पोस्टपोनमेन्ट करने के लिए मैं राजी नहीं हूं । तो मेरा मानना है कि जो भी स्थिति है आज, जो अंतर् यात्रा पर जा सकें, वे जाएँ। जो नहीं हैं इस स्थिति में, वे अपनी बाह्य तृप्ति की यात्रा पर लगे रहें । आज नहीं कल उनको सविधा मिल जाएगी । तब उनको भी अंतर यात्रा पर जाना पड़ेगा ।

उनमें जो बुद्धिमान हैं वे आज भी अंतरयात्रा पर जा सकते हैं । क्योंकि बुद्धि का मतलब ही इतना है कि वह भविष्य को भी देख पा सकती है । इसलिए गरीब आदमी भी अगर बुद्धिमान है तो अंतरयात्रा पर जा सकता है । अमीर आदमी बुद्धु है तो भी अंतरयात्रा पर जा सकता है क्योंकि उसकी सिचुएशन उसको धक्का देती है । गरीब आदमी की सिचुएशन उसको धक्का नहीं देती, उसका चिन्तन ही धक्का दे सकता है । और मेरी उत्सुकता इसमें बिलकुल नहीं है ।

सामाजिक रूपान्तरण, दुखों को मिटा देगा यह मिथ्या पुराण-कल्पना है । यह बात समाप्त हो गई, यह कभी नहीं होनेवाला है क्योंकि हमने सब करके देख लिया है । किसी को लगता था कि शिक्षा नहीं है इसलिए दुख है, शिक्षा हो गई और दुख बढ़ गए । शिक्षित समाज ज्यादा दुखी है, अशिक्षित समाज के बजाए । और अशिक्षित समाज अगर दुखी है तो सिर्फ इसलिए कि शिक्षित लोग सुख उठा रहे होंगे । तो बड़े मजे का मामला है, मेरी उत्सुकता नहीं कि सब शिक्षित हों । **मेरी उत्सुकता यह है कि शिक्षित हों या अशिक्षित हों– भीतर जाने की, प्रक्रिया उनको ख्याल में आये ।**

यह मैं जानता हूं कि शिक्षित को जल्दी आ सकती है । इसलिए शिक्षित हो जाएं तो अच्छा है । लेकिन मेरी यह धारणा नहीं है कि शिक्षित होने से उनका दुख मिटनेवाला है । उससे नहीं मिटनेवाला है । इसलिए मैं सीधा उत्सुक नहीं हूं । फिर मेरी अपनी समझ यह भी है कि चाहे जीवन के मूल्यों का सवाल हो, चाहे कोई और सवाल हो एक छोटा सा वर्ग नेतृत्व करता है ।

मैं लोकतांत्रिक नहीं हूं, डेमोक्रेटिक मेरी दृष्टि नहीं है और मैं मानता हूं कि डेमोक्रेसी सौ साल से ज्यादा दुनिया में नहीं चल सकती । वह तभी तक चल सकती है जब तक पूरी नहीं आती है । जिस दिन पूरी आ जाएगी उस दिन उसकी मूढ़ता हमें दिखाई पड़ जाएगी । कठिनाई यह है कि जब तक कोई चीज पूरी न आए तब तक उसकी मूढ़ता हमें दिखाई भी नहीं पड़ सकती । वह पूरी आए तो जो चीज मौजूद

होती है और जब हम उससे लड़ते हैं तो उसकी बुराई दिखाई पड़ती है ।

जो मौजूद नहीं है उसके लिए हम लड़ते हैं क्योंकि उसकी भलाई दिखाई पड़ती है हमें वह पूरी तरह आ जाए तो । जैसे सार्वभौम शिक्षा अमरीका में आज मूढ़तापूर्ण हो गई है और बुद्धिमान लड़के युनिवर्सिटी छोड़कर भाग रहे हैं । जिनका भी आई क्यू (बुद्धिमत्ता अंक) थोड़ा ज्यादा है वे 'ड्राप आउट' हो जाते हैं और जिनका आई. क्यू. छोटा है वे युनिवर्सिटी में पढ़ रहे हैं । जिनके पास बुद्धि कम है वे लगे हैं पढ़ने में, जिनके पास बुद्धि ज्यादा है वे युनिवर्सिटी से बाहर आ गए क्योंकि वे कह रहे हैं कि तुम्हारी युनिवर्सिटी में कुछ भी न मिला । तुम्हारी शिक्षा से कुछ नहीं मिला । वह एक धोखा है, लेकिन यह धोखा तब तक चल सकता था जब तक शिक्षा पूरी नहीं थी । अब वह पूरी हो गई । अब मुसीबत पता चली कि यह तो धोखा साबित हुआ, इनसे तो कुछ मिलनेवाला नहीं है ।

अगर आज लड़के का बाप उससे कह रहा है कि विश्वविद्यालय में पढ़ो तो वह लड़का पूछ रहा है कि तुम पढ़े तो तुमको क्या मिला? तुम्हें कुछ मिला हो तो हमें कहो । अब यह बाप कह तो नहीं सकता कि नौकरी मिली । क्योंकि नौकरी तो आज अमरीका में गैर पढ़े लिखे को भी मिल सकती है । यह गरीब बाप कह सकता है कि नौकरी मिलेगी, कपड़ा मिलेगा, मकान मिलेगा, आज अमरीकन बाप यह भी नहीं कह सकता कि कपड़ा मिलेगा कि मकान मिलेगा कि नौकरी मिलेगी । यह तो बिना इसके भी मिल सकता था ।

यह कोई सवाल न रहा और लड़का यह कह सकता है कि तुमको कपड़ा मिल गया, मकान मिल गया, कार मिल गई, सब मिल गया, लेकिन जिन्दगी कहां है तुम्हारे पास ? तुम कुम्हाला गए सब पाने में, सड़ गए । न तुमने कभी प्रेम किया, न तुमने कभी गीत गाया, न तुम नाचे । तो कपड़े मिल जाएंगे, ठीक इतने अच्छे न मिलेंगे । लेकिन वह नाचना चाहता है, गाना चाहता है, प्रेम करना चाहता है । आज अमरीकी लड़का अपने बाप से कह रहा है कि तुम्हारी सारी शिक्षा ने सिवाय युद्धों के और क्या पैदा किया ? हम लड़ना नहीं चाहते हैं, हम प्रेम करना चाहते हैं ।

आज अमरीकी हिप्पी ने एक बोर्ड लगाया है—लव, नाट वार (युद्ध नहीं, प्रेम)। और उसका कहना ठीक है । वह कहता है जब तक कोई समाज प्रेम करने में समर्थ नहीं होगा तब तक वह लड़ेगा, वह बच नहीं सकता । इसलिए सभी युद्धखोर प्रेम के खिलाफ होते हैं । अगर सेक्स सप्रेस किया जाए तो ही तुमको लड़वाया जा सकता है, नहीं तो लड़वाया नहीं जा सकता । इसलिए हमेशा यह होता है कि जब भी कोई समाज मुक्त हो जाता है सेक्स के मामले में, तो फिर जीत नहीं पाता । हार जाता है ।

आज अगर अमरीका वियतनाम में नहीं जीत सकता तो उसका कारण है कि जिस वियतनामी सैनिक से वह लड़ रहा है वह भूखा है, क्षुधातुर है, कामवासना से अतृप्त है और अमरीकी लड़ता है, न भूखा है, न क्षुधातुर है, न कामवासना से अतृप्त है। लड़ने का उसको कोई कारण नहीं। तो वह जबरदस्ती लड़ रहा है, लड़ने को उसमें कोई कारण नहीं। तो वह जबरदस्ती लड़ रहा है। कोई वजह समझ में नहीं आती कि लड़ना किसलिए। **इसलिए मजे की बात है कि जब भी कोई श्रेष्ठ सभ्यता किसी निकृष्ट सभ्यता से लड़ेगी तो निकृष्ट जीत जाएगी और श्रेष्ठ हारेगी।**

यह भारत का दो हजार साल का अनुभव है। हम उन सभ्यताओं से हारे जिनके पास कुछ नहीं था लेकिन भूख थी, वासना थी, अतृप्त काम था। तो मुगलों ने, तुर्कों ने, हूणों ने हमें रौंद डाला। हमारे पास लड़ने का कोई ख्याल ही नहीं था।

जब भी आपके पास सब होता है तब आप चाहते है कि झंझट न हो। और जब कुछ भी नहीं होता तब आप चाहते हैं कि झंझट हो जाए। क्योंकि झंझट से शायद कुछ निकल भी आये और सदा निकलता है, क्योंकि खाने को कुछ होता नहीं। झंझट से कुछ मिलेगा ही, नहीं मिलेगा तो कुछ खोनेवाला नहीं।

अब अमरीका शिक्षित हुआ तब पता चला कि यह शिक्षा तो टूट जाएगी, चल नहीं सकती। अमरीका धनी हुआ तो पता चला कि धन बिलकुल बेकार है। अमरीका टेक्नॉलॉजी में सशक्त हो गया तो अमरीका को लग रहा है कि बस हमें इनसे छुटकारा चाहिए। मशीन जान ले रही है। क्योंकि मशीनें धीरे-धीरे आदमियों पर कब्जा किये जा रही हैं। हमको दिखाई नहीं पड़ता, पता भी नहीं चलता क्योंकि हम आदी हो जाते हैं क्योंकि जब आप चौरस्ते से गुजरते हैं और लाइट आपको रास्ता नहीं देती, आप चुपचाप खड़े रहते हैं। आपको पता नहीं कि मशीन आपको आज्ञा कर रही है। मशीन आज्ञा कर रही है और आप रुके हुए खड़े हैं। और कहीं ख्याल नहीं आ रहा है कि यह मशीन की गुलामी है। अमरीका को पता चला क्योंकि यह लाइट का ही मामला नहीं रहा। चौबीस घंटे सब तरफ से मशीन गुलाम किये हुए है। अभी लड़कों ने बर्कली युनिवर्सिटी में खड़े होकर एक कीमती रालसराइस गाड़ी जलाई, नई खरीद कर, सिम्बल की तरह – हमें मशीन से छुटकारा चाहिए।

कोई चीज जब पूरे पैमाने पर आती है तब पता चलता है। न्यूयॉर्क में १८२० में घोड़ा गाड़ी की रफ्तार थी साढ़े ग्यारह मील, और आज कार की रफ्तार है साढ़े सात मील प्रति घंटा। और अगर यह पांच साल तक चला तो कार की रफ्तार

आदमी की पैदल रफ्तार से कम हो जाएगी। लेकिन यह तब तक आपको पता नहीं चल सकता जब तक कि कारें पूरी तरह सबको उपलब्ध न हों।

हमारी तकलीफ यह है कि कोई भी चीज जब तक पूरी न हो जाए, हमें पता नहीं चलता। लोकतंत्र मरेगा, सौ साल से ज्यादा जिन्दा नहीं रह सकता। गरीब मुल्कों में जिन्दा रह जाए, अमीर मुल्कों में खत्म होगा, खत्म हो गया।

उसका कारण है क्योंकि अब साफ समझ में आना शुरू हुआ कि जितना तुम नीचे के आदमी से सलाह लेते हो उतनी नीची सलाह मिलती है। मिलेगी ही। उसके लिए और कोई उपाय नहीं। और जब नीचे का आदमी चुनाव करने लगता है तो ठीक है जिनसे उनका तालमेल बैठता है उनको चुनता है। इसलिए लोकतंत्र निम्नतर राजनीतिज्ञों को ऊपर पहुंचाने में समर्थ होता जाता है। जो जितना निम्नतम है वह उतनी ही जल्दी ऊपर पहुंच सकता है। अब मेरी दृष्टि यह है कि सवाल यह नहीं है कि गरीब को कैसे प्रशिक्षित किया जाए, श्रेष्ठ मूल्यों के लिए। मेरे लिए सवाल यह है कि जो श्रेष्ठ है उसको कैसे प्रशिक्षित किया जाए कि वह भीड़ से जगत को बचाए। यह मेरे लिए जो प्रॉबलेम है, वह बिलकुल और है।

जिसको आप डेमोक्रेसी कहते हैं वह डेमोक्रेसी नहीं मोबोक्रेसी है, लोकतंत्र नहीं है। भीड़-तंत्र है। और भीड़ मजबूत होती चली जा रही है, सब तरफ से गर्दन कसती जा रही है। और मजे की बात यह है कि इस गर्दन कसने में भीड़ अपना भी नुकसान करेगी, मगर उसे पता भी नहीं चल सकता, उसको पता भी नहीं चल सकता।

आज भीड़ कहती है कि तुम्हारे पास धन ज्यादा नहीं होना चाहिए, कल भीड़ कहेगी कि कुछ लोगों के पास बुद्धि ज्यादा क्यों? क्यों, धन से क्यों खिलाफत है? धन से खिलाफत यह है कि जिसके पास धन है वह मालकियत करता है। क्या फर्क पड़नेवाला है जिसके पास बुद्धि है वह मालकियत करेगा। मालकियत से कठिनाई है। आज नहीं कल भीड़ कहेगी कि बुद्धि क्यों ज्यादा होनी चाहिए। बुद्धि का वितरण कर दो। अगर कोई बच्चे का १०० का आई. क्यू. है तो उसे इंजेक्शन देकर नीचे लाओ क्योंकि वह तल पर होना चाहिए, किसी के पास ज्यादा बुद्धि होगी तो वह खतरनाक है। खतरनाक इसलिए होगा कि वह अंतत. ऊपरी तल पर पहुंच जाएगा और मैनिपुलेट करेगा। आखिर बचोगे कैसे?

आज रूस में, हमने इंतजाम कर लिया कि हम अमीर और गरीब को नहीं बचने देंगे, मिटा देंगे, मिटा सकता था। आज अमरीका में एक गरीब आदमी

जितनी ऊंचाई पर पहुंच सकता है, न भी पहुंचे तो गरीब रहकर भी जितना अमीर रहता है, रूस का अमीर भी उतना अमीर नहीं है। रुस का जो नोबुल प्राइज विनर है उसको भी एक प्राइवेट कार मिल जाए तो वह कहेगा कि उसे स्वर्ग मिल गया।

रूस का जिसको हम कहें अमीर वर्ग, वह अमरीका के गरीब वर्ग से पीछे है। मगर एक लिहाज से तृप्त है क्योंकि ईर्ष्या के लिए मौका नहीं क्योंकि कोई अमीर नहीं। गरीब की तृप्ति इसमें नहीं है कि वह गरीब न रह जाए, उसकी तृप्ति इसमें है कि कोई अमीर न रह जाए। बहुत मजा यह है कि अगर अमीर नहीं रह जाता तो गरीब की सारी की सारी गति बन्द हो जाती है। वह अपने हाथ पर कुल्हाड़ी मार रहा है क्योंकि गति वह आगे का वर्ग करता है। वह कुल्हाड़ी मार रहा है।

दूसरा मजे का मामला यह है कि वह जो बुद्धिमान है वह तो किसी न किसी रास्ते से ऊपर पहुंच जाता है। आज नहीं कल गरीब को लगेगा कि बुद्धि ज्यादा नहीं होनी चाहिए। आज नहीं तो कल गरीब आदमी को लगेगा कि एक आदमी के पास सुन्दर औरत है तो दूसरे के पास कुरुप औरत क्यों होनी चाहिए। यह सवाल अगर हम लोकतंत्र की अंतरात्मा में पूरी तरह प्रवेश करें तो वह इस बात का है कि जो एक के पास है वह सबके पास होनी चाहिए। तो इसका एक ही मतलब हो सकता है कि परिवार न रह जाए, वेश्यालय हो जाए।

इसलिए जो प्राथमिक समाजवादी थे, मार्क्स के पहले, उनका तो ख्याल था कि आज नहीं तो कल हमें स्त्री को सोशलाइज करना पड़े, नेशनलाइज करना पड़े। क्योंकि वह बड़ा भारी झगड़ा है। अगर हम आत्मा के भीतर घुसें तो दो ही झगड़े हैं। इसको वैज्ञानिक कहते हैं टेरिटोरियल और सेक्सुअल। उसकी मालकियत होनी चाहिए कुछ चीजों पर और उसकी काम तृप्ति होनी चाहिए। पेट और काम आदमी के दो बुनियादी उपद्रव हैं। पेट पर तुम समानता लाते हो तो कल काम पर समानता लानी पड़ेगी और यह सारी समानता इतने जाल पैदा कर दे और इतना उपद्रव पैदा कर दे तब तुम्हें पता चले कि असमानता बेहतर है। उसके पहले पता नहीं चलता।

तो मेरी कठिनाई यह नहीं है, मेरे लिए यह सवाल नहीं है कि लोकतंत्र कैसे जीते, समाजवाद कैसे जीते। मेरे लिए सवाल यह है कि मनुष्य की चेतना

भीड़ से कैसे मुक्त रहे, क्योंकि वही मुक्त चेतना इस भीड़ को भी सच्चे रास्ते पर ले जा सकती है।

तो मेरा काम तो बुनियादी रूप से चुने हुए के लिए (फार द चूजेन फ्यू) है। इसमें मुझे जो समझते हैं वे भला गलत अर्थ में लेते हों, लेकिन मेरा काम ही चुने हुए थोड़े से लोगों के लिए है। मेरी उत्सुकता ही नहीं है आम में और यह मेरी दृष्टि में है और इसके प्रति मैं बिलकुल साफ हूं। मेरा अपना दृष्टिकोण ऐसा है कि जैसे एक स्कूल के क्लास में तीस बच्चे हैं। लोकतंत्र की दृष्टि यह है कि क्लास में जो आखिरी बच्चा बैठा है शिक्षक को उस पर ध्यान देना चाहिए ज्यादा से ज्यादा। ठीक ही लगता है क्योंकि उसके पास बुद्धि कम है तो उस पर ज्यादा जोर दिया जाए, तो वह विकसित होगा।

लेकिन इसका दूसरा परिणाम होनेवाला है कि जो क्लास में प्रथम है वह उपेक्षित रह जाएगा। और मेरा मानना है कि अंतिम पर कितना ही ध्यान दिया जाए वह प्रथम नहीं हो सकता और इस प्रथम पर जोर दिया जाए तो यह इस प्रथम से भी आगे जा सकता है। अगर मेरे हाथ में शिक्षा हो तो मैं प्रथम पर ध्यान देने पर जोर दूंगा। मैं सार्वजनिक शिक्षा के पक्ष में नहीं हूं। जो शिक्षित किये जा सकते हैं उनको ही शिक्षित किया जाना चाहिए।

अगर इस मुल्क में पचास हजार व्यक्ति शिक्षित किये जा सकते हैं तो उनको पूर्ण रूप से शिक्षित किया जाना चाहिए। वे इस मुल्क को सोने से भर देंगे। हम पूरे पचास करोड़ को शिक्षित करने में लगे हैं। एक मीडियॉकर समाज पैदा होगा उस शिक्षा में और वे जो शिक्षित नहीं हो सकते हैं और जबरदस्ती शिक्षित किये जाते हैं वे सब तरह के उपद्रव पैदा कर देंगे और करेंगे।

आज युनिवर्सिटी में जो छुरा लेकर खड़े हो रहे और नकल कर रहे हैं ये वे लोग हैं जो शिक्षित नहीं किये जा सकते। लेकिन इनके भीतर भी आत्म महत्वाकांक्षा जग आई है कि कोई प्रथम आता है तो उनको भी प्रथम आना चाहिए, उन्हें भी गोल्ड मेडल मिलना चाहिए, तो वह छुरे से गोल्ड मेडल ले सकते हैं और तो कोई उपाय नहीं है। नकल से ले सकते हैं, चोरी से ले सकते हैं। वे सारी की सारी व्यवस्था को तोड़ डालते हैं और वह जो प्रथम आ सकता था वह यह सब नहीं कर सकता। वह पिछड़ा जा रहा है। वह पिछड़ा जा रहा है, उसकी समझ से बाहर होती जा रही है सारी बात।

मेरा मानना है कि प्रतिभा शिक्षित होनी चाहिए । सार्वजनिक शिक्षा बिलकुल बेमानी है। और जो व्यक्ति बौद्धिक रूप से प्रतिभाशाली नहीं हो सकता, शारीरिक रूप से प्रतिभाशाली हो तो उसका शरीर शिक्षित होना चाहिए।

शिक्षित सब किये जाने चाहिए, लेकिन किसी लोकतांत्रिक दृष्टि से नहीं बल्कि व्यक्ति की क्षमताओं की दृष्टि से । मैं व्यक्तिवादी हूं। समाज मेरे लिए बिलकुल मूल्यवान नहीं है। अगर तुम्हारे पास शरीर अच्छा है जो राममूर्ति हो सकता है, तो मैं कहता हूं कि फिक्र छोड़ो बुद्धि की। क्योंकि अगर बुद्धि अच्छी नहीं है तो तुम आईस्टीन कभी नहीं होनेवाले हो। और राममूर्ति भी होने से बच जाओगे और आइंस्टीन–एक मीडियॉकर रह जाओगे। और मीडियॉकर आदमी बड़ा खतरनाक है क्योंकि महत्वाकांक्षा उनकी भारी होती है और क्षमता उनकी होती नहीं है, और सब तरह के उपद्रव पैदा कर देगें और आखिरी उपद्रव उनका यह है कि अगर हम नहीं पहुंच सकते प्रथम तो कम से कम एक बात पक्की कर लें कि कोई भी प्रथम न पहुंच सके, इतना पक्का होता है। तो वे समाज को पीछे ढकेलते हैं।

तो एक अर्थ में मैं व्यक्तिवादी हूं और दूसरे अर्थ में, मैं अभिजात्य का पक्षपाती हूं । हर व्यक्ति का अभिजात्य है। उसका कुछ खास है जो विकसित होना चाहिए और नहीं है उसमें तो चिंता छोड़ देनी चाहिए। हम उसके खाने पीने, रहने का इंतजाम कर दें यह पर्याप्त है । वह शांति से जिये यह पर्याप्त है । तो अभिजात्यवादी भी मैं हूं। यह मेरा मानना है कि हम कोई भी उपाय करके आइंस्टीन पैदा न कर सकेंगे, चाहे कितना ही समाजवाद हो, चाहे कितना ही लोकतंत्र हो। आइस्टीन ही आइंस्टीन हो सकेगा ।

और अगर हमने जिद्द की और जिसकी संभावना है क्योंकि रूस में वे फिक्र कर रहे हैं इस बात की कि बुद्धिमाप करीब कैसे लाया जा सके। तो बड़े मजे की बात है कि नीचे वाले का बुद्धिमाप ऊंचा नहीं लाया जा सकता है लेकिन ऊपरवाले का नीचे लाया जा सकता है । यह बड़ा मजा है। जो है उसे छीना जा सकता है लेकिन जो नहीं है उसे पैदा नहीं किया जा सकता।

अगर एक बच्चा इडियट पैदा होता है तो हम उसे जीनियस नहीं बना सकते हैं, लेकिन जीनियस को हम एक इंजेक्शन देकर इडियट बना सकते है। क्योंकि यह जो जीनियस है यह तो डिलिकेट मामला है क्योंकि एक छोटा सा इंजेक्शन भी इसको नष्ट कर देता है। एक लठ्ठ मार दें आइंस्टीन की खोपडी पर तो कितनी बड़ी खोपड़ी हो तो क्या करेगा ? और इस लठ्ठ

मारनेवाले को कोई आइंस्टीन से बड़ी खोपड़ी नहीं चाहिए मारने के लिए। खोपड़ी ही नहीं चाहिए, तो कोई भी मार सकता है।

तो मेरा जो दृष्टिकोण है अपना, ऐसे जगत का है जो अभिजात्य जगत हो, जो अरिस्टोक्रेटिक हो। वह गरीब के भी हित में है और गरीब मेरे लिए मल्टीडायमेन्शनल शब्द है। कई तरह की गरीबियाँ हैं। धन की गरीबी है, बुद्धि की गरीबी है, भाव की गरीबी है, नीति की गरीबी है, हजार तरह की है और तुम एक गरीबी हटाओ तो दूसरी गरीबी मांग करना शुरू कर देती है। हमारी तकलीफ सदा यह है कि जो मौजूद होता है हम उससे पार उठकर नहीं देख पाते। भविष्य मैरिटोक्रेसी का है। भविष्य में जो गुणवान हैं, उसके हाथ में सत्ता जानी चाहिए। मैरिट के हाथ में जानी चाहिए। गरीबी कोई गुण नहीं है। और मैं नहीं मानता हूं कि गरीब जो भी बातें करता है वह उसके भी पक्ष में है। यही बड़ी तकलीफ है।

३ भगवान और राजनीति

प्रश्न–३ – गरीबी हटाने के लिए आपके चिन्तन में कोई खास कार्यक्रम है? और आवश्यकता लगने पर राजकारण में प्रवेश करने के लिए नेता तैयार करने के लिए आश्रम स्थापने की आपकी कोई योजना है?

भगवान श्री :

नहीं, नहीं। बिलकुल नहीं। जरा भी नहीं। क्योंकि मेरा मानना ही यही है कि राजनीति ही बीमारी है और हमें मनुष्य को एक ऐसा दृष्टिकोण देना चाहिए जो कम से कम राजनैतिक हो तो हम इस बीमारी से छुटकारा पा सकते है। राजनीति रहेगी, सदा रहेगी। आवश्यकता है, लेकिन राजनीति मनुष्य के चित्त पर केन्द्रीय नहीं हो जानी चाहिए। केन्द्रीय हो जाए तो बीमारी है और अभी केन्द्रीय है। अभी ऐसा है कि बाकी सब गौण है। सब कोने में है। मंदिर की जो वेदी है वह राजनीति है।

मेरी दृष्टि यह है कि जितना ज्यादा गैरराजनीतिज्ञ व्यक्तित्व पैदा कर सकें उतना अच्छा है और गैर-राजनीतज्ञ व्यक्तित्व जितने वजनी हो सकें समाज में उतना ही इन राजनीतिज्ञों की मूढ़ताओं से लड़ना आसान होगा। इस मुल्क ने एक प्रयोग किया था और इस प्रयोग के मैं पक्ष में हूं। इस मुल्क ने साधु को, संत को, संन्यासी को प्रथम कोटि पर रखा है, राजनेता को, राजा को दूसरी

कोटि पर रखा है और अगर एक सम्राट भी होता और एक फकीर होता तो फकीर के चरणों में सम्राट को सिर रखना पड़ता ।

ब्राह्मण को नम्बर एक रखा था । ब्राह्मण का उन दिनों का अर्थ था उन दिनों का बुद्धिमान वर्ग—इंटेलीजेन्सिया । क्षत्रिय को नम्बर दो रखा था । शक्ति कितनी ही बड़ी हो नम्बर दो होनी चाहिए बुद्धि के सामने । तो मेरे हिसाब में तो ब्राह्मण लौटना चाहिए । मेरे हिसाब में तो ब्राह्मण लौटना चाहिए । समाजवाद, लोकतंत्र, सब क्षुद्र को प्रथम रखने की चेष्टा है, श्रेष्ट को ही नहीं, अंतिम को । तो मैं तो इस दृष्टि में मनु से बहुत राजी हूं कि वह आदमी बहुत बुद्धिमान था और गांधी और विनोबा बचकाने हैं उसके सामने । क्योंकि सवाल ब्राह्मण का नहीं, सवाल यह है कि हम किस तत्व को ऊपर रखें ।

एक बड़े मजे की घटना इस मुल्क में घटी और वह घटना यह थी कि जब मनु ने ब्राह्मण को ऊपर रखा तो ब्राह्मण ने न धन की फिक्र की, न पद की फिक्र की । क्योंकि जिसके पास बुद्धि है और एक बार बुद्धि को प्रथम स्थान उपलब्ध होता हो तो उस समय न धन की फिक्र, न पद की फिक्र होती है। बुद्धि इतना बड़ा पद है अपने आप में, फिर उसे कुछ भी नहीं चाहिए । तो ब्राह्मण भूखा भी रहा, भीख भी मांगी लेकिन उसने राजनीति की ओर, धन की ओर—इन सबकी कोई चिन्ता न की और तब इस मुल्क ने बुद्धि के अंतिम शिखर छुए, बहुत ऊंचे शिखर छुए ।

जिस दिशा में भी इस मुल्क ने अपनी बुद्धि को लगाया वह आत्यंतिक हो गई । उस दिशा में फिर कोई मुल्क आगे न जा सका और आज भी मजे की बात है कि दुनिया का सारा विकास ब्राह्मणों के द्वारा हो रहा है, आज भी । मेरे लिए आइंस्टीन एक ब्राह्मण है और मार्क्स, और फ्रायड एक ब्राह्मण हैं। बड़े मजे की बात है कि दुनिया का सारा विकास ब्राह्मणों के हाथ से होता है। सदा हुआ है और उनके हाथ से ही हो सकता है । क्योंकि वही नया विचार जगत को देते हैं, नई दिशा और नई दृष्टि जगत को देते हैं। लेकिन ताकत आज उनके हाथ में नहीं है। यह मजे की बात है । एटम बम की वजह से पश्चिम को खयाल आया और आइंस्टीन को, ओपेन हेमर को, लिनियस पालिन, को इन सबको खयाल उठा कि हमने एटम बम बनाया, लेकिन चलाने का हक तो राजनीतिज्ञ के हाथ में चला जाता है । राजनीतिज्ञ के पास वह बुद्धि नहीं है, पर बुद्धि के शिखर से जो भी ताकत उपलब्ध होगी वह उसके हाथ में चली जाती है ।

तो एक ख्याल पश्चिम में पैदा हुआ। लीनियस पालिन ने दस हजार वैज्ञानिकों से दस्तखत लिये सारी दुनिया से और उन्होंने कोशिश की कि हम एक इंटरनेशनल ताकत बनाना शुरू करें और हम तय करें तभी कोई ताकत का उद्घोषण करे अन्यथा वह ताकत उद्घोषित न की जाए। यह ब्राह्मण की सत्ता में लौटने की चेष्टा है। इसका मतलब क्या है? इसका मतबल है कि हम खोजेंगे और कल तुम हमारी भी नहीं सुनते! लीनियस पालिन खड़ा है वाशिंगटन में भूखा, व्हाइट हाउस के सामने और कह रहा है कि एटम बम का प्रयोग नहीं होना चाहिए तो पुलिसवाले पकड़ कर बन्द कर देंगे। जिन लोगों ने एटम बम बनाया उनकी कोई ताकत नहीं है बनाने के बाद और अब तो इतनी नवीन खोज चल रही है सारी दुनिया में कि अगर सब खोजें राजनीतिज्ञ के हाथ में आ गईं तो आदमी का कोई भविष्य नहीं। एटम बम तो कुछ भी नहीं और भी नई खोजें और भी खतरनाक हैं।

अब तो आपके मस्तिष्क में पैदा होते से ही इलेक्ट्रोड डाला जा सकता है। आपको पता ही नहीं चलेगा, वह सब नर्सरी में हो जाएगा। एक छोटे से आपरेशन से एक छोटी सी इलेक्ट्रोड आपके मस्तिष्क में डाल दी जाएगी। फिर आपको आज्ञा दी जा सकती है दिल्ली से, आप कहीं भी दुनिया में हों। और जो आज्ञा हो आप उसके विपरीत न कर सकेंगे और आपको लगेगा कि आज्ञा मेरे भीतर से आ रही है।

अब यह सारी की सारी खोज ब्राह्मण की है, लेकिन यह सारी ताकत राजनीतिज्ञ के हाथ में चली जानेवाली है। तो मेरी दृष्टि यह है कि राजनीति को कमजोर करना है। ज्ञान को, ब्राह्मण को, धर्म को प्रतिष्ठित करना है। तो मैं किसी को राजनीति में भेजने को उत्सुक नहीं हूं। मैं तो राजनीति में भी कोई बुद्धिमान आदमी दिखाई पड़े तो उसे खींच लेने में उत्सुक हूं और हमें इस तरह के स्तम्भ समाज में खड़े करने पड़ेंगे कि जो अपनी प्रतिष्ठा से राजनीतिज्ञों की प्रदीप्ति को कम करें। क्योंकि उसकी दीप्ति कम नहीं होती।

और अभी हालत यह है कि अगर साधु को भी प्रतिष्ठित होना हो तो मिनिस्टर की खुशामद करनी चाहिए। अगर एक साहित्यकार को प्रतिष्ठित होना हो तो उसे पद्मभूषण होना चाहिए। और तो कोई उपाय नहीं। एक कवि, एक सगीतज्ञ भी दिल्ली पर नजर रखे हुए हैं कि कब उसको प्रतिष्ठा राष्ट्रपति से मिले। और कोई नहीं पूछता कि राष्ट्रपति के पास क्या है, न संगीत है, न साहित्य है, न बुद्धि है, न विज्ञान है, कुछ नहीं है। लेकिन

राष्ट्रपति के पास तिकड़मबाजी है। शतरंज के खेल का हिसाब है, बस उतना ही और उससे सब प्रतिष्ठित होंगे फिर।

राजनीति की प्रतिष्ठा और महिमा कम करनी है। और उसका एक ही उपाय है कम करने का कि राजनीति के मुकाबले नये आयाम खड़े हों और राजनीति से पृथक प्रतिष्ठा के स्रोत बनें। मैं ऐसे संन्यासी जरूर पैदा करना चाहता हूं, ऐसा आश्रम भी बनाना चाहता हूं जो गरिमाओं के नये स्रोत उपलब्ध करवायें। संगीतज्ञ संगीत की वजह से प्रतिष्ठित हो, एक साहित्यिक साहित्य की वजह से प्रतिष्ठित हो। और राजनीति से सम्मान लेना बन्द किया जाए।

आज नहीं कल एक हालत आनी चाहिए कि राजनीतिज्ञ तभी सम्मानित हो सके जब ये दूसरी प्रतिभाएं उसे सम्मान दें अन्यथा सम्मानित न हो सके। मगर यह सारा का सारा अभिजात्य दृष्टिकोण है। इसका लोकतंत्र से समाजवाद से सीधा विरोध है। तो मेरी उत्सुकता नहीं है। उत्सुकता मेरी है, पर दूसरी दिशाओं में।

४ भगवान और भारत की जनता

प्रश्न–४:–लोग आपको भगवान कहकर संबोधन करते हैं। मुझे उसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं होता। लेकिन भगवान होने के कारण भारत की जनता का दुख-दर्द नाश करने का उपाय आप क्यों नहीं करते? कुछ खास वर्ग के लोगों के लिए साधना–शिविर व प्रवचन रखने से ही भगवान का कार्य क्या समाप्त हो जाता है?

भगवान श्री :

बहुत सी बातें हैं, एक तो भगवान दुख-दर्द दूर करे यह गरीब आदमी की आकांक्षा है। यह भगवान का लक्षण नहीं। क्योंकि भगवान तो सदा से है। दुख-दर्द दूर हुए नहीं। अगर भगवान है तो सदा से है। दुख-दर्द तो दूर हुआ नहीं। गरीब आदमी की आकांक्षा जरूर है कि वह दूर करे। गरीब आदमी को भगवान भी तभी महत्वपूर्ण है जब वह उसकी बीमारी दूर करे, गरीबी दूर करे। गरीब आदमी को गरीबी दूर करवानी है, भगवान तो गौण है। उससे कोई प्रयोजन नहीं और मेरा मानना है कि यह भ्रान्त आकांक्षाओं से भरे रहने का कारण है। गरीबी भगवान से दूर होने-वाली नहीं है। नहीं तो कभी की दूर हो गई होती। गरीबी भगवान के

रहते हुए बड़े मजे से चल रही है । राम के रहत चलती है, कृष्ण के रहत चलती है, जीसस के, बुद्ध के रहते चलती है । साफ मामला है कि गरीबी को दूर करने का उपाय कुछ, और है, भगवान नहीं है ।

तो पहली तो बात मैं यह कहना चाहता हूं कि भगवान से यह गरीबी दूर नहीं होगी । और जिन मुल्कों की दूर हुई है, उन्होंने भगवान को जिस मात्रा में छोड़ा है, उस मात्रा में दूर हुई है । भगवान को जितने जोर से पकड़े हुए हैं, उतना मुश्किल है गरीबी दूर होना । क्योंकि आकांक्षा ही गलत है । यानी मामला ऐसा है कि मैं सोच रहा हूं कि सूरज के निकलने से मेरी टी. बी. ठीक होगी । अगर उससे कोई सम्बन्ध नहीं है तो मैं मरूंगा और टी. बी. दूर होने के जो उपाय हो सकते थे वह भी नहीं खोजूंगा ।

गरीब आदमी को ठीक से जान लेना चाहिए कि गरीबी का कारण भगवान नहीं है इसलिए दूर करने का कारण भी नहीं हो सकता । दूर करने का कारण वही हो सकता है जो उसके बनाने का भी कारण हो । अगर भगवान ने गरीबी बनाई है तो भगवान गरीबी दूर करेगा । गरीबी आदमी की व्यवस्था है, उसके उपकरणों, टेक्नॉलॉजी, उसके अर्थतंत्र की बाई-प्रोडक्ट है । उसके कारण तो बदलने पड़ेंगे गरीबी बदलने के लिए । वह आदमी की जिम्मेदारी है, उससे भगवान से लेना-देना कुछ भी नहीं । सामाजिक घटना है गरीबी, धार्मिक घटना नहीं है । चूंकि चीजों को हम धार्मिक घटना बना लेते हैं तो उपद्रव शुरू होता है, फिर हम इलाज भी नहीं खोज पाते ।

इसलिए मेरा मानना है कि रूस ने भगवान को बिलकुल इंकार कर दिया तो ही गरीबी दूर कर सका । भगवान से कोई लेना-देना नहीं है गरीबी के होने नहीं होने का । बल्कि एक मात्रा में जितना भगवान के लिए भरोसा है कि वह गरीबी दूर कर देगा उतना ही वह गरीबी को बनाये रखने का कारण होता है । तो मैं तो मानता हूं कि गरीब को जानना चाहिए कि गरीबी के आर्थिक कारण हैं, धार्मिक कारण नहीं हैं । आर्थिक कारण बदलेंगे तो गरीबी बदल जाएगी ।

दूसरी बात मुझे कोई भगवान कहे या मुझे कोई शैतान कहे यह कहनेवाले के सम्बन्ध में कुछ खबर देता है, मेरे सम्बन्ध में कुछ भी नहीं । लोग हैं जो मुझे शैतान कहते हैं । उन्हें मैं शैतान दिखाई पड़ता हूं । किसी को मैं भगवान दिखाई पड़ता हूं । उसे दिखाई पड़ता है । मेरे लिए निष्प्र-

योजन है कि जो मुझे शैतान कहता है उसे समझाने जाऊं कि मुझे शैतान मत कहो। और मेरे समझाने से वह मानेगा जो मुझे शैतान मानता है! वह मेरे समझाने से मानेगा कि मुझे शैतान न कहे। बल्कि यह समझाना उसे और भी मुझे शैतान कहने का कारण बनेगा। मेरी उत्सुकता क्या है? ठीक मजे की बात दूसरी तरफ भी है। जो मुझे भगवान कहता है यह उसका दृष्टिकोण है, उसे कुछ दिखाई पड़ रहा है, जैसे किसी को शैतान दिखाई पड़ता हूं। अगर मैं उसे समझाने जाऊं कि भगवान नहीं हूं तो यह उसे और भगवान कहने का कारण बनता है।

यह बहुत मजे की बात है कि अगर आप मेरे पैर छूते हों और मैं कहूं कि नहीं, नहीं मत छुओ तो और पैर छूने का कारण बन जाता है। बल्कि कई बार मैंने अनुभव ऐसा किया है कि आप पैर छू रहे हों और मैं आपके सिर पर हाथ लगा दूं कि मजे से छू लें तो शायद दुबारा आप न छुएं। आदमी के मन का काम करने का ढंग बड़ा कान्ट्राडिक्टरी है। तो मैंने अनुभव किया कि दो ही उपाय हैं: अगर मुझे कोई भगवान कहता है तो एक तो उपाय यह है कि मैं स्वीकार कर लूं कि मैं भगवान हूं जो कि मैं नहीं कर सकता। नहीं कर सकता इसलिए कि मेरे लिए सभी कुछ भगवान है। इसलिए विशेष रूप से किसी को भगवान कहने का और कोई भी अर्थ नहीं। भगवान होना मेरे लिए समस्त जीवन का साधारण स्वभाव है, साधारण क्वालिटी है। सभी लोग भगवान हैं। भगवान और अस्तित्व मेरे लिए पर्यायवाची है।

तो कोई मुझे भगवान कहे तो हां तो मैं नहीं भर सकता कि मैं भगवान हूं। सिर्फ इसिलए हां नहीं भर सकता कि इसमें कोई अर्थ नहीं। क्योंकि तुम भी भगवान हो। इसको मैं इंकार भी नहीं कर सकता क्योंकि जब सभी कुछ भगवान है तो अपने लिए इंकार करूं तो भी विशेषता अपने लिए खोज रहा हूं। मेरे लिए भगवान होना ऐसा है जैसे आप जीवित हैं। अगर मुझे जीवित कह दें तो क्या इंकार करूं और क्या हां भरूं? मेरे लिए आप भी जीवित हैं।

जो कठिनाई उठती है वह प्रश्न करनेवाले के मन से आती है। उसका ख्याल ऐसा है कि भगवान राम होते हैं, कृष्ण होते है, बुद्ध होते हैं, कोई भगवान होता है, बाकी कोई भगवान नहीं। मेरे लिए भगवान होना सहज अस्तित्व का गुण हैं। और राम अगर भगवान हो पाते हैं तो इसीलिए कि आप

भी भगवान हो सकते हैं । नहीं तो राम भगवान नहीं हो सकते । आपके भीतर जो छिपा है जब आप उसे खोल लेते हैं तो आपको पता चलता है। तो मैं किसको इंकार करने जाऊं और किसको हां भरने जाऊं । हां भरने में भी अहंकार है और ना करने में भी अहंकार है।

अगर मैं हां भरूं कि मैं भगवान हूं, जैसे मेहरबाबा हां भरते हैं कि मैं भगवान हूं तो मैं मानता हूं कि उसमें अहंकार है क्योंकि यह स्वीकार करना कि मैं भगवान हूं इसका मतलब है कि मैं विशिष्ट हूं और लोगों से । अगर मेहर बाबा से जाकर आप कहें कि आप ही भगवान नहीं, सामने का जो तमोली है, पानवाला है वह भी भगवान है तो वह नाराज होंगे, तमोली को तो छोड़ दें, अगर और कोई आदमी कहीं कह रहा है कि मैं भी अवतार हूं तो वे मानने को राजी नहीं होंगे क्योंकि वे कहते हैं कि इस युग के वे ही अवतार हैं और एक युग में एक ही अवतार होता है।

अगर आप यह भी कहें कि राम,कृष्ण और बुद्ध यह भी अवतार हैं तो भी उनको कठिनाई होती है तो वे कहते हैं कि वे सब आंशिक अवतार हैं, मैं पूर्ण अवतार हूं । हिन्दू कहते हैं कि कृष्ण पूर्ण अवतार थे तो मेहरबाबा कहते हैं कि फिर समानता हो जाती हैं । तो मेहरबाबा कहते है कि पहले मैं अवतार रूप में आया था इस बार मैं स्वयं भगवान के रूप में आया हूं । इसमें पाजिटिव अहंकार है। विधायक रूप से यह आदमी पागल हो गया।

कृष्णमूर्ति निगेटिव हैं, लेकिन वे भी बहुत अहंकारी हैं । वे कहते हैं कि मैं भगवान नहीं हूं, मैं गुरू नहीं हूं, मैं कोई भी नहीं हूं । लेकिन चालीस साल से यही कहे चले जा रहे हैं। इसको भी कहने की कोई जरूरत नहीं। वह भी कहने की कोई जरूरत नहीं। अगर मैं चिल्लाता हूं चालीस साल तक कि मैं चोर नहीं, मैं बेईमान नहीं । इसकी भी कहने की कोई जरूरत नहीं। नहीं हूं तो नहीं हूं, लेकिन यह निगेटिव अहंकार है। यह भी विशेषता की बात होगी। मैं नहीं हूं: मैं गुरू भी नहीं हूं, मैं भगवान भी नहीं हूं, मैं अवतार भी नहीं हूं । मैं कोई भी नहीं हूं ।

मेरी तकलीफ है । ये दो उपाय हैं सीधे । इन दो उपायों के भी मेकेनिज्म हैं। अगर मैं कहूं कि मैं भगवान हूं, विधायक अहंकार का उपयोग करूं, तो कुछ लोग हैं जो समर्पण कर सकते हैं वे तत्काल मुझे मान लेंगे, जो विनम्र हैं । जो अहंकारी हैं वे मेरे खिलाफ, दुश्मन हो जाएंगे । अगर मैं कहूं कि भगवान नहीं हूं तो जो अहंकारी हैं वे मुझे मान लेंगे । इसलिए

कृष्णमूर्ति के पास अहंकारियों के सिवाय कोई इकट्ठा नहीं होता । क्योंकि अहंकारी उसी के पास जा सकता है जो कहता है कि मैं गुरू भी नहीं, मेरे पैर भी मत छूना, मुझे नमस्कार भी न करना । मैं भगवान भी नहीं हूं ।

जो इतना भी कहता है कि तुम मेरे पास आते रहो, लेकिन मैं तुम्हें सिखाता भी नहीं और जो तीस साल से सीख भी रहे, हैं उनसे और इतनी भी विनम्रता नहीं कहने की कि हमने तुमसे कुछ सीखा है, तो वे लोग इकट्ठे होंगे । मेहरबाबा के पास वे लोग इकट्ठे होंगे जो समर्पण कर सकते हैं, जिनको कोई सहारा चाहिए, जो इतने भयभीत है अपने भीतर, इतना भी अहंकार नहीं कि अपने पैर पर खड़े हो सकें, जो चाहते हैं कि किसी के कन्धे पर छोड़ दें, वे वहां इकट्ठे हो जाएंगे । **मेरी तकलीफ है कि ये दो विकल्प हैं और मैं दोनों को गलत मानता हूं । तो एक ही उपाय है कि मैं चुप रहूं, इस सम्बन्ध में कुछ न कहूं ।**

५ भगवान और तंत्र-विज्ञान

प्रश्न–५ :– गणेशपुरी के मुक्तानंदजी के आश्रय में एक गुजराती अखबार के तंत्री की एक अमरीकन युवती से मुलाकत हुई, जिसने आपके प्रति आक्षेप किया कि शक्तिपात के नाम पर उसके साथ आपने संभोग किया । क्या शक्तिपात संभव है? और उसके लिए शारीरिक संभोग जरूरी है ?

भगवान श्री : –

शक्तिपात संभव है, शक्तिपात संभव है । और काम–ऊर्जा के द्वारा भी शक्तिपात संभव है । संभोग के द्वारा भी शक्तिपात संभव है । तंत्र की पूरी की पूरी प्रकियाएं यही है । संभोग के द्वारा भी शक्तिपात संभव है । बल्कि तंत्र का तो मानना ही यही है कि संभोग के अतिरिक्त और किसी तरह शक्तिपात हो ही नहीं सकता । तो जहां तक तथ्य की बात है, सैध्दान्तिक तथ्य की बात है, संभोग से शक्तिपात संभव है । क्योंकि संभोग का मतलब ही इतना है : दो शक्तियों का मिलन । अगर इसमें श्रेष्ठतर शक्ति कोई भी हो तो निकृष्ट शक्ति की तरफ प्रवाहित हो जाएगी । यह बायो–इलेक्ट्रिकल मामला है । इसमें कोई बहुत बड़ा धर्म का मामला भी नहीं है । यह सिर्फ सीधा वैज्ञानिक, विद्युत का मामला है । यह संभव है इसमें कोई अड़चन नहीं है । लेकिन घटना बिल-कुल झूठी है ।

मैं तंत्र पर भी बहुत से प्रयोग करता हूं और तंत्र पर मेरी बड़ी श्रद्धा है, भारी श्रद्धा है और मेरा तो यह मानना है कि तंत्र अकेला विज्ञान है जो भारत ने दिया है जगत को। और आज नहीं कल भारत की प्रतिष्ठा होगी तो वह तंत्र के कारण होगी। लेकिन भारत में नीतिवादी की जो पकड़ है उसकी वजह से तंत्र को पूरी तरह दबाया गया है, पूरी तरह। कल्पना नहीं कर सकोगे कि अकेले राजा भोज ने एक लाख तांत्रिकों की हत्या की। अकेले एक आदमी ने कसम खा ली कि भारत में एक तांत्रिक को नहीं बचने दूंगा। तांत्रिकों के लाखों ग्रन्थ जलाये। यह हालत पैदा कर दी कि कोई आदमी अपने को तांत्रिक कह न सकता था खुले आम। क्योंकि तांत्रिक का मतलब हो गया कि गलत।

लेकिन पिछले दो सौ वर्षों में यूरोप में जो खोजबीन हुई है, विशेष कर फ्रायड के बाद और विल्हेम रेक की जो खोजबीन हुई उस सबने तंत्र को नया मार्ग दे दिया। और तंत्र की शोध वैज्ञानिक है क्योंकि मनुष्य के भीतर जो गहरी से गहरी ऊर्जा है वह सेक्स एनर्जी है। अगर हम मनुष्य की शक्तियों की खोज करने चलें तो जैसे फिजिसिस्ट पदार्थ को तोड़कर इलेक्ट्रॉन्स पर पहुंचा है, वैसे तांत्रिक मनुष्य को तोड़कर सेक्स एनर्जी तक पहुंचा है।

मनुष्य की सारी की सारी बनावट सेक्स की है। आप पैदा हुए सेक्स से। आपके मां और बाप के दो विद्युतकण, सेक्स-कण में आपके निर्माण का सारा खेल है। फिर उन्हीं के सेक्स कणों के विस्तार से आपके सारे शरीर का विस्तार हुआ। आपकी पूरी शरीर की बनावट सेक्स-कणों की है। जैसे पदार्थ विद्युत कणों से बना है वैसे जीवन काम कणों से बना है और आपकी पूरी की पूरी ऊर्जा ठीक समझा जाए तो सेक्स एनर्जी है।

तंत्र का कहना यह है कि सेक्स इनर्जी अगर नीचे की तरफ बहती हो तो काम-वासना है, यही ऊर्जा अगर ऊपर की तरफ बहने लगे तो कुंडलिनी है। कुंडलिनी का कुल मतलब इतना है कि काम-ऊर्जा ऊपर की तरफ प्रवाहित हो रही है और आयाम बदल गया। तो तंत्र ने भारी प्रयोग किये कि संभोग के क्षण में भी साधक अपनी काम-ऊर्जा को ऊपर प्रवाहित कर सकता है और अगर काम-ऊर्जा ऊपर प्रवाहित हो रही है तो हमें सब दिखाई पड़ता है कि संभोग हो रहा है, संभोग नहीं हो रहा है। इसलिए **खजुराहो, पुरी और कोणार्क के सारे मंदिर अश्लील नहीं हैं, तांत्रिक हैं**। लेकिन हमने हिम्मत ही खो दी दुनिया से कहने की

कि ये तांत्रिक हैं। हम खुद ही इतने कमजोर और डरपोंक हो गए कि तंत्र की बात ही नहीं करनी है।

तो तंत्र पर मेरी प्रगाढ़ उत्सुकता है। वक्तव्य नहीं देता हूं तंत्र पर, उसका कुल कारण इतना है जैसे-जैसे लोग तैयार हो जाएं वैसे-वैसे वक्तव्य दिए जाएं। अन्यथा अकारण उपद्रव हो जाएगा। तो तंत्र पर मेरी श्रद्धा है। मेरे पास जो साधक आते हैं उनको मैं तंत्र की दिशा में भी प्रवाहित करता हूं। उनको तंत्र के प्रयोग भी देता हूं जिसे वे अपने जीवन में कर सकें। उनकी काम–ऊर्जा ऊपर की तरफ प्रवाहित हो इसके लिए भी उनको साधनाएं देता हूं। इन साधनाओं के सम्बन्ध में बहुत कुछ तो गुह्य रखना पड़ेगा। इसोटेरिक रखना पड़ेगा। इसकी आम चर्चा नहीं हो सकती। आम चर्चा न होने का कारण चर्चा में कोई गड़बड़ी है ऐसा नहीं, आम चर्चा होने का कारण लोक मानस है।

वह जो भीड़ है चारों तरफ, उसने जो सुन समझ रखा है उससे विपरीत का कुछ नहीं समझ सकता। अमरीका जैसे विचार स्वातंत्र्य वाले मुल्क में विल्हेम रेक अमेरिकन मनोवैज्ञानिक – जर्मन था अमरीका गया – उसको तीन साल पागलखाने में काटने पड़े। क्योंकि जो बातें उसने कहीं उनको गलत भी नहीं सिद्ध किया जा सकता और सही माना नहीं जा सकता क्योंकि पूरी क्रिश्चियानिटी खिलाफ है। तो जबरदस्ती पागल करार दिया। यह इस सदी के गहनतम अपराधों में से एक है। और उस आदमी ने इतनी गहरी खोज की थी कि अगर वह प्रकट हो सकती पूरी की पूरी तो मनुष्य जाति का परम कल्याण होता।

उसको तीन साल पागल खाने में रखा। पागल खाने में ही वह मरा। उसके मित्रों का, उसके शिष्यों का, बड़े से बड़े मनोवैज्ञानिकों का ख्याल है कि यह जबरदस्ती थी। उसने तंत्र का एक यंत्र बनाया था जो भारत में बहुत दिन तक था। और उसको पहली दफा अमरीका ने बनाया। उसने एक छोटा सा संदूक बनाया। व्यक्ति को संदूक में बन्द कर देता था और संदूक की जो दीवालें थीं वे बहुत संवेदनशील तत्वों से बनाई गई थीं। और उस आदमी की काम ऊर्जा को ऊपर ले जाने का प्रयोग करवाता था। जब ऊर्जा ऊपर जाती है तो वह पूरा का पूरा बाक्स जो है चार्ज्ड हो जाता था। वह इलेक्ट्रिफाइड हो जाता था। और उसके उसने हजारों प्रयोग किये। वह जब इलेक्ट्रिफाइड हो जाता तो किसी भी काम-वासना से भरे हुए व्यक्ति को उसके भीतर लिटा दो, तो आधे घंटे में उसकी काम-वासना क्षीण हो जाएगी। किसी काम-वासना से पागल हो गए व्यक्ति को उसके भीतर लिटा दो तो घंटे भर में उसका पागलपन शांत हो जाए।

लेकिन यह उसने बाक्स बनाना शुरू किया, और कोई उपाय नहीं मिल सका मुकदमा चलाने का तो एक साजिश की गई, उस पर मुकदमा चलाया गया कि उसने बिना लाइसेन्स लिए यह बाक्स बनाया। इसका पेटेन्ट नहीं करवाया। इसलिए यह सब उपद्रव हुए। उसके पेटेन्ट होने चाहिए। इसका रजिस्ट्रेशन होना चाहिए और वह इसको बेच रहा है, यह कमोडिटी तो बाजार की हो गई, लेकिन अमरीका में पूरा का पूरा स्टेण्डर्डाइजेशन और यह सब होना चाहिए और वह नहीं हुआ और इसने कुछ बाक्स बेचे।] उस पर मुकदमे चलाए गए। उसको जिन्दगी भर इस मुकदमेबाजी में परेशान किया गया।

ये सारी तकलीफें हैं, लोकमानस की तकलीफें हैं। लोकमानस की समझ का तल है। तो कुछ चीजें अनिवार्य रूप से गुप्त रखनी पड़ेंगीं। तो मेरे पास बहुत से प्रयोग चल रहे हैं जो गुप्त हैं। इन गुप्त प्रयोगों से न मालूम कितने साधु-सन्यासियों को तकलीफें होगी – होंगीं ही। यह स्वाभाविक है, न मालूम कितने राजनीतिज्ञों को होगी। स्वाभाविक है, न मालूम कितने-कितने तरह के ठेकेदारों को तकलीफ होगी। लेकिन स्वाभाविक है। तो मेरे सम्बन्ध में वे बहुत सी बातें ईजाद करें–कल मुकदमा भी लाएं, कल मुझे बन्दी करें, यह सब हो सकता है। इसमें कुछ बहुत अड़चन का मामला नहीं है। यह कोई अड़चन का मामला नहीं है। और हमारे मुल्क में तो किसी भी व्यक्ति को अप्रतिष्ठित करना हो तो सरलतम बात यह है कि उसके चरित्र पर कुछ बात कह दी जाए, फिर कोई खोजबीन का सवाल नहीं है। कोई प्रयोजन नहीं, बात समाप्त हो गई।

और क्या नहीं हो सकता, अभी मुझे खबर आई, मैं तो यहां हूं और डेढ़ साल से अमृतसर नहीं गया हूं। अमृतसर में उन्होंने पोस्टर लगा दिये हैं कि मैं गिरफ्तार कर लिया गया हूं। क्योंकि मेरे पास गांजा, अफीम, चरस, एल. एस. डी. मेस्कलिन इन सब का भारी भंडार मिल गया। तो सारी दीवालों पर पोस्टर लगा दिये गये। अब जो आदमी पढ़ रहा है, वह पता भी लगाने कहां जाएगा कि हुआ होगा या नहीं, वह आदमी आमतौर से मानता है कि हुआ होगा, नहीं तो पोस्टर कैसे लगते। अब यह पोस्टर लगानेवाला कौन है ? उसे कौन खोजने जाए, उसको कौन पकड़े और क्या प्रयोजन और उसका क्या हल है ? चुपचाप मुझे सुन लेना पड़ेगा।

बड़े मजे का मामला है। अभी परसों मेरे मित्र के एक पड़ोसी ने आकर कहा कि तुम्हें पता है दस बारह महिलाओं ने उन्हें बहुत बुरी तरह मारा है, बहुत बुरी तरह पीटा है और पुलिस आई तब उनको बचाया है, क्योंकि वे महिलाओं के साथ छेड़खानी कर रहे थे। अब मामला यह है कि इन सबके लिए क्या किया जाए ?

और मेरे साथ यह सब चर्चाएं चल सकती हैं क्योंकि जो मैं प्रयोग कर रहा हूँ, जो बातें कर रहा हूं उनका इनसे तालमेल बैठ जाता है । जैसे मैंने **"संभोग से समाधि की ओर"** पर वक्तव्य दिया । तो अगर मैं ब्रह्मचर्य के पक्ष में बोल रहा हूं और मेरे अनैतिक सम्बन्ध भी हैं किसी से, तो भी मेरे सम्बन्ध में आप कुछ बोल नहीं सकते क्योंकि मेरे वक्तव्य मेरे हैं । क्योंकि मैं बोल तो ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में रहा हूं और मेरा चोरी छिपे किसी से अनैतिक सम्बन्ध भी है तो आप पता नहीं लगा सकते ।

लेकिन मेरे साथ तकलीफ यह है कि मेरा किसी से सम्बन्ध भी नहीं तो भी मैं ब्रह्मचर्य के पक्ष में नहीं बोल रहा हूं । तकलीफ बहुत उल्टी है, मैं बोल तो संभोग के पक्ष में रहा हूं, तो मानना बिलकुल पक्का ही है कि इस आदमी के संभोग के सम्बन्ध होंगे ही जो संभोग के पक्ष में बोल रहा है । तो कोई अगर आपसे कहे तो भरोसे के योग्य बात मालूम पड़ती है कि जो आदमी संभोग के पक्ष में बोल रहा है उससे ब्रह्मचर्य की तो आशा नहीं की जा सकती । ब्रह्मचारी से संभोग की आशा नहीं की जा सकती । फिर भी ब्रह्मचारी से आप संभोग की आशा कर सकते है– संभोग के पक्ष में बोलनेनाले से ब्रह्मचर्य की कैसे आशा करेंगे । यह सब स्वाभाविक है – यह सब चलता रहेगा – चलता रहेगा ।

—०—

'रजनीश को भूल जायँ : भगवान् मर याद रखें'

(प्रस्तुत सामग्री गीता ज्ञान यज्ञ, सातवाँ अध्याय, क्रास मैदान, बंबई में दिनांक २६ मई, १९७१ को दिये गये पाँचवे प्रवचन का अंतिम अँश है । प्रतिदिन प्रवचन के बाद नव-संन्यासी भगवान् श्री की उपस्थिति में कीर्तन करते थे । कीर्तन के बाद संन्यासी "भगवान् श्री रजनीश की जय" कहा करते थे । दस-पन्द्रह हजार श्रोताओं में से कुछ लोगों को यह जयकार व 'भगवान् श्री' शब्द अच्छा नहीं लगा । इसके विरोध में पिछले दिनों उनके पत्र आते रहे ।

भगवान् श्री ने उन पत्र-प्रेषकों को यह संबोधन दिया है, जो शायद सब लोगों को अन्तदृष्टि व स्पष्टता प्रदान करेगा । अत: प्रस्तुत है ।)

०

संसार से, त्रिगुणात्मक प्रकृति से ऊपर उठने का द्वार कहाँ है ? उससे ऊपर उठने का द्वार है प्रभु-स्मरण । कहीं से भी स्मरण मिलता हो तो परम सौभाग्य है । लेकिन हमारी तो बहुत अजीब हालतें है ।

यहां कुछ संन्यासी मेरे नामके सामने 'भगवान्' लगाकर चिल्ला देते हैं। मैं चुप रह जाता हूं, यह सोचकर कि **आज नहीं कल वह मेरा नाम भी छोड़ देंगे और सिर्फ भगवान् का नाम ही उच्चारित करेंगे। क्योंकि उसमें 'भगवान्' शब्द झूठ नहीं है। उसमें मेरा नाम ही झूठ है।** लेकिन मेरे पास चिट्ठियां आती हैं लोगों की कि आप लोगों को मना क्यों नहीं करते कि वे आपके नाम के आगे 'भगवान्' लगाना बन्द करें। सिर्फ रजनीश कहें, आचार्य रजनीश कहें। 'भगवान्' लगाना बन्द करें। जिनकी चिठ्ठियाँ आती हैं, वे समझते रहे है कि वे बहुत होशियार लोग हैं। एक आदमी ने चिट्ठी नहीं भेजी कि वह कहता है कि रजनीश कहना बन्द कर दें। क्योंकि दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं।

जब तक रजनीश हूं तब तक भगवान् होना मुस्किल, **जब भगवान् हो जाऊं तो रजनीश होना मुश्किल।** ये दोनों कन्ट्राडिक्टरी (विरोधाभासी) हैं, लेकिन वे चिट्ठियाँ लिखनेवाले होशियार लोग जो हैं—होशियार का मतलब कि जिनके पास युनिवर्सिटी का कागज का कोई टुकड़ा वगैरह है। मुझे कई चिट्ठियां आयीं कि फौरन बन्द करवाए, यह क्या हो रहा है ?

अकल के तो हम जैसे दुश्मन हैं, लट्ठ लेकर अकल के पीछे पड़े हुए हैं। **चलो यही बहाना अच्छा, भगवान् का नाम तो ले लेते हैं, खूँटी मेरी भी सही, तो क्या हर्जा ? खूँटी तुड़वा लेंगे, खूँटी कोई बड़ी चीज नहीं है।** खूंटी कितनी देर बचेगी ? गिर ही जायेगी। लेकिन नहीं, जिनको यह तकलीफ होती है, उनकी तकलीफ का कारण है कि प्रभु-स्मरण जैसी चीज का उन्हें पता नहीं है।

एक और मजे की बात है कि मैं सदा आपके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता रहा। तब किसी ने मुझे चिट्ठी लिखकर नहीं भेजी कि हमको आप परमात्मा क्यों कहते है ? मैंने बहुत कह कर देख लिया, मैंने सोचा कि वह कुछ सुनायी नहीं पड़ता आपको, तो मैंने बन्द कर दिया। अब यह दूसरे छोर से इन लोगों ने शुरू कर दिया। यह छोर दूसरा है, बात वही है।

लेकिन अब उनको बड़ी बेचैनी हो रही है, उन्हीं सज्जनों को जिनको कि मैं निरन्तर कहता रहा कि आपके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ। उन्होंने बड़े मन से स्वीकार किया था। उनको अब बड़ी अड़चन हो रही है। अच्छा ही है, इस बहाने आपके कान में पड़ गया।

कल तो एक मित्र ने आकर कहा कि अब दोबारा इन्होंने आपको "भगवान्" कहा तो मैं सुनने नहीं आऊँगा। बहुत मजेदार बात है। वह मुझे सुनने आते हैं— कहते

हैं, आपकी बात मुझे प्रीतकर है, आपकी बात ठीक लगती है, लेकिन यह भर नहीं होना चाहिए---यह भगवान् का नाम !

भगवान् से ऐसी क्या दुश्मनी है ? मुझसे तो दुश्मनी नहीं मालूम पड़ती उनकी, क्योंकि कहते हैं आपको सुनने में अच्छा लगता है, हम रोज आना चाहते है। भगवान् से दुश्मनी मालूम पड़ती है। मत आयें, बिल्कुल न आयें और पिछली दफे जो आये हों उसको बिल्कुल भूल जायं, क्योंकि वह बेकार है, क्योंकि मैं जो बोल रहा हूं सिर्फ इसलिए बोल रहा हूं कि मुझमें ही नहीं, सब जगह, जहां भी कभी कुछ दिखायी पड़े–भगवान ही दिखायी पड़े---उसके लिए बोल रहा हूं। और मुझे सुनने का कोई प्रयोजन नहीं। बिल्कुल न आयें, क्या जरूरत है ? यहां कोई शाबास कहकर आपको फुसला कर आपसे कोई दौड़ तो नहीं लगवानी है मुझे।

आज इतना ही लेकिन उठना मत, संन्यासी अब कीर्तन करेंगे। आप बैठे रहेंगे अपनी जगह। थोड़ा हम भगवान् का स्मरण करेंगे।

–प्रेषक : **स्वामी योग चिन्मय**

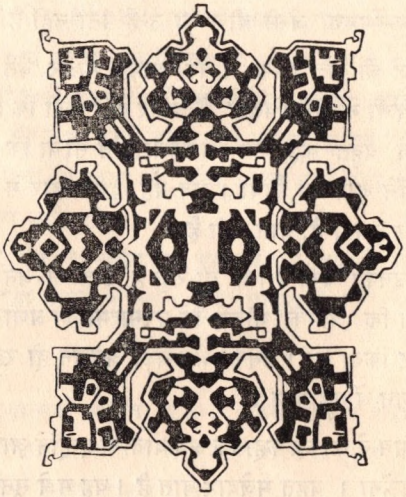

मैं कौन हूं ?

प्रिय आत्मन्,

प्रेम. मैं न भगवान हूं, न तीर्थंकर, न पैगम्बर ।

वस्तुतः तो मैं हूं ही नहीं ।

या, शून्यवत हूं ।

किन्तु जब से स्वयं को शून्य जाना तभी से एक तमाशा भी देख रहा हूं ।

क्योंकि तभी से मैं एक दर्पण की भांति हो गया हूं ।

और जो भी मेरे पास आता है वही अपनी तस्वीर मुझमें देख लेता है ।

इसलिए किसी को मैं भगवान भी दिखाई पड़ता हूं और किसी को शैतान भी ।

और इस सब पर मेरे पास हंसने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है ।

मैं न किसी का समर्थन करता हूं, न विरोध–क्योंकि वे जो कुछ भी कह रहे हैं, वह स्वयं उनके ही संबंध में है और उससे मेरा कोई भी संबंध नहीं है ।

रजनीश के प्रणाम

१४–८–१९७१

(बहुत से मित्रों ने जब भगवान श्री के मौन उत्तर को नहीं समझा, और उन्हें पत्र द्वारा कुछ निवेदन करने को लिखा तब भगवान श्री द्वारा लिखा गया यह पत्र—प्रस्तुत है ।)

विज्ञान, धर्म और कला

संकलन : स्वामी योग चिन्मय

मेरे प्रिय आत्मन्,

विज्ञान है सत्य की खोज, धर्म है सत्य का अनुभव। कला है सत्य की अभिव्यक्ति। विज्ञान प्राथमिक है, पहला चरण है। और विज्ञान चाहे तो देर तक बिना धर्म के जी सकता है। चूंकि सत्य की खोज ही उसका लक्ष्य है। मैंने कहा, विज्ञान देर तक बिना धर्म के जी सकता है और आज तक बिना धर्म के विज्ञान जिया है। न केवल बिना धर्म के, बल्कि विज्ञान धर्म को अस्वीकार करके जिया है। जी सकता है। कोई रास्ता चाहे तो बिना मंजिल के भी हो सकता है। लेकिन विज्ञान जैसे ही विकसित होगा, मनुष्य सिर्फ सत्य को जानना ही नहीं चाहेगा, सत्य होना

भी चाहेगा इसलिए बहुत देर तक विज्ञान भी धर्म के बिना नहीं रह सकता है और उसके न रहने की संभावना रोज–रोज प्रगट होती चली जाती है ।

विगत सदी के बड़े से बड़े वैज्ञानिक, चाहे आइन्स्टीन हों, चाहे मेक्सप्लांक हों, चाहे एडिंग्टन हों, चाहे कोई और हों, वे सारे लोग जीवन के अंतिम क्षणों में धर्म की बात करते हुए पाये गये हैं । यह बड़ी कीमती संभावना है । आने वाली सदी में विज्ञान रोज–रोज धार्मिक होता चला जायेगा क्योंकि कोई रास्ता मंजिल के बिना रह सकता है, लेकिन मंजिल के बिना कोई रास्ता पूरा नहीं हो सकता । और मंजिल के बिना अगर कोई रास्ता हो तो अर्थहीन भी होगा, असंगत भी होगा, एब्सर्ड भी होगा । क्योंकि जो रास्ता किसी मंजिल पर न पहुंचाता हो, उसे रास्ता कहना ही बहुत कठिन है । एक दिन रास्ते को मंजिल भी स्वीकार करनी पड़ती है और कोई साधन साध्य के बिना अर्थपूर्ण नहीं हो पाता है । इसलिए पश्चिम में जहां विज्ञान का गहरा प्रभाव है, रोज-रोज अर्थहीनता का, मीनिंगलेसनेस का विस्तार होता चला गया ।

विज्ञान को धार्मिक होना पड़ेगा । धर्म का अर्थ है सत्य के साथ एक होने की आकांक्षा, सत्य का अनुभव । आदमी इतने से तृप्त नहीं हो सकता कि सत्य क्या है, उसकी तृप्ति तो पूरी तभी होती है जब वह सत्य के साथ एक हो जाय । हम यही न जानना चाहेंगे कि प्रेम क्या है, हम प्रेम होना भी चाहेंगे । हम यही न जानना चाहेंगे कि धन क्या है, हम धनी होना भी चाहेंगे । हम यही न जानना चाहेंगे कि सत्य क्या है, हम सत्य होना भी चाहेंगे । क्योंकि जानना सदा होने के लिए चरण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । **इसलिए मनुष्य की खोज का दूसरा चरण है, धर्म !**

धर्म चाहे तो बहुत देर बिना कला के जी सकता है । जैसा मैंने कहा, विज्ञान चाहे तो बिना धर्म के जी सकता है । धर्म चाहे तो बहुत दिन तक बिना कला के जी सकता है । लेकिन जब धर्म की बहुत गहरी अनुभूति होगी तो जो हमने जाना है वह प्रगट भी होना चाहेगा । सिर्फ जो हम हो गये हैं, उतना काफी नहीं है, जो हम हो गये हैं वह अभिव्यक्त भी होना चाहेगा । हम न केवल जानना चाहेंगे कि प्रकाश कैसे जन्मता है, हम प्रकाश होना भी चाहेंगे । लेकिन हम प्रकाश होने से चुप न होंगे, हम प्रकाश की किरणों को दूर–दूर तक फैलाना भी चाहेंगे । **जिस दिन धर्म की अनुभूति इतनी प्रगाढ़ होती है कि ओव्हरफ्लोइंग शुरू हो जाय, जिस दिन धर्म की अनुभूति इतनी गहरी होती है कि हम से बाहर बहने लगे, चारों तरफ फैलने लगे, उस दिन कला का जन्म होता है ।**

धर्म चाहे तो बहुत देर तक कला से बच सकता है, लेकिन बहुत ज्यादा देर

तक नहीं बच सकता है । अनुभूति जब गहरी होगी तब बंटना चाहेगी । जब बादल सघन हो जायेंगे तो बरसना चाहेंगे और जब नदी में वेग आयेगा तो वह सागर की तरफ दौड़ना चाहेगी और जब प्रेम हमारे हृदय में भर जायेगा तो वह चारों तरफ बरसना चाहेगा, और जब बीज पूर्ण विकसित होगा तब फूटकर अंकुर बनना चाहेगा । सत्य की अनुभूति पर ही बात नहीं रुक जाती, सत्य की अभिव्यक्ति भी अनिवार्य है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि जितना सत्य अनुभव करने से मिलता है उससे हजारगुना सत्य अभिव्यक्त करने से वापस लौट आता है । क्योंकि जो हम देते हैं वह हमें वापस हजारगुना होकर मिलने लगता है । जिस चीज में हम दूसरों को साझीदार बनाते हैं, जिस चीज को हम बंटवारे में मित्र बनाते हैं वह चीज हम पर लौटने लगती है । सत्य की अनुभूति अन्ततः सत्य की अभिव्यक्ति बनती है ।

विज्ञान पहला चरण है मनुष्य की यात्रा का, धर्म दूसरा चरण है और कला उसका अंतिम चरण है । लेकिन यह बड़ी कठिन बात है, जैसा मैं कह रहा हूं । इतिहास में उल्टा हुआ है । इतिहास में ऐसा हुआ कि धर्म पहले आया, कला बाद में आयी और विज्ञान सबसे बाद में आया । इसलिए कुछ और बातें भी आपसे कहना चाहूंगा—जो धर्म विज्ञान के पहले आ जायगा, वह अन्धविश्वास के निकट होगा, वैज्ञानिक नहीं हो सकता । इसलिए जो धर्म विज्ञान के पहले पृथ्वी पर आ गया वह जिन्होंने अनुभव किया होगा—बहुत थोड़े से लोगों ने : कोई जीसस, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कन्फ्यूसियस, दस-पांच लोगों के जीवन में तो वह गहरे अर्थों में था लेकिन हम सबके जीवन में वह अन्धविश्वास से ज्यादा नहीं हो सकता था ।

विज्ञान के ठीक विकास के बाद जो धर्म आयेगा वही वैज्ञानिक हो सकता है । यही वजह है कि दुनिया में होना तो चाहिए एक धर्म, लेकिन हो गये अनेक । बीमारियां अनेक हो सकती हैं, स्वास्थ्य अनेक नहीं होते । मैं बीमार पड़ूंगा तो अपने ढंग से, आप बीमार पड़ेंगे तो अपने ढंग से । और बीमारियों के हजारों नाम हैं । कोई टी बी से बीमार पड़ता है, कोई कैंसर से बीमार पड़ता है, लेकिन जब आप स्वस्थ हो जाते हैं तो स्वास्थ्य का कोई भी नाम नहीं है । तब आप यह नहीं कह सकते कि मैं किस ढंग से स्वस्थ हो गया हूं, आप सिर्फ स्वस्थ हो जाते हैं । अधर्म हजार हो सकते हैं, धर्म हजार नहीं हो सकते । **अधर्म बीमारी है, धर्म स्वास्थ्य है इसलिए धर्म तो एक ही हो सकता है, लेकिन एक नहीं हो सका ।** क्योंकि विज्ञान के पहले जो भी आयेगा वह अन्धविश्वास होगा, वह विज्ञान नहीं बन पाता है ।

अब पहली बार पृथ्वी पर धर्म के अवतरण की समुचित व्यवस्था हो पा रही है । और भविष्य में जो धर्म अवतरित होगा वह हिन्दू नहीं होगा, वह मुसलमान

नहीं होगा, वह जैन नहीं होगा, वह ईसाई नहीं होगा, वह सिर्फ धर्म होगा। और जिस दिन मनुष्य जाति पर सिर्फ धर्म का अवतरण होगा उस दिन हम धर्म के नाम पर हो रही नासमझियों से मुक्त हो सकेंगे, उसके पहले नहीं हो पायेंगे।

आश्चर्य की बात है कि साधारण धार्मिक आदमी हिन्दू या मुसलमान होता है सो ठीक, संन्यासी भी हिन्दू, मसलमान, ईसाई और जैन होता है। कम से कम संन्यासी तो सिर्फ धार्मिक हो, वह भी संभव नहीं हो पाया। आश्चर्यजनक है यह बात। असल में समाज के रोग संन्यासी को भी पकड़ लेते हैं। समाज की सीमाएं और विशेषण संन्यासी को भी घेर लेते हैं। समाज की गुलामियां और समाज के बन्धन संन्यासी को भी जकड़ लेते हैं। धर्म पैदा हुआ, कुछ थोड़े से व्यक्तियों के जीवन में, उनकी अनुभूति गहरी थी, लेकिन समूह के जीवन में वह तब तक नहीं पहुंच सकता था जब तक कि विज्ञान ठीक भूमि को साफ न कर दे। अब विज्ञान ने भूमि ठीक से साफ कर दी है और अब धर्म अवैज्ञानिक ढंग से नहीं स्वीकृत होगा, इसीलिए बड़ी कठिनाई पैदा हो रही है।

जो लोग अन्धविश्वासों को पकड़े हुए हैं वे सोचते हैं कि सारी दुनिया अधार्मिक होती जा रही है, वे बड़ी भ्रांति में हैं। **सारी दुनिया अधार्मिक नहीं हो रही है, सारी दुनिया अन्धविश्वासों से मुक्त होने की कोशिश कर रही है। और नये धर्म के जन्म की संभावनाओं को प्रगट कर रही है।** आज बड़ी अजीब हालत है। आज अजीब हालत यह है कि जिसको हम अधार्मिक कहें कि जो मंदिर नहीं जाता, हमारे पुराने शास्त्र को नहीं मानता, हमारे पुराने सिद्धान्त को नहीं मानता, संभावना यह हो गयी है कि उस आदमी की जिन्दगी में धर्म थोड़ा ज्यादा हो सकता है, बजाय उनके, जो मंदिर जाते हैं, पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं। **सच तो यह है कि इस सदी के समस्त बुद्धिमान विचारशील लोग धर्म के कारागृहों में खड़े होने को राजी नहीं रह गये।** उसका कारण यह नहीं है कि लोग अधार्मिक हो गये हैं, उसका कारण कुल इतना है कि वे वैज्ञानिक होने की चेष्टा कर रहे हैं। अवैज्ञानिक धाराएं उन्हें छोड़नी पड़ेगी, उन्हें वे छोड़ रहे हैं।

तो आज उल्टी बात हुई है। अगर **हम बुद्ध के जमाने में लौटें, या कृष्ण के जमाने में लौटें तो उस जमाने का श्रेष्ठतम बुद्धिमान आदमी धार्मिक था और आज अगर हम धर्म की तरफ देखें तो आज का सबसे कम विकसित आदमी धार्मिक मालूम पड़ेगा।** सबसे कम विकसित, सबसे कम बुद्धिशाली, सबसे ज्यादा पिछड़ा हुआ आदमी धार्मिक मालूम पड़ता है। कृष्ण के जमाने में सबसे ज्यादा विकसित, सबसे ज्यादा बुद्धिमान धार्मिक मालूम पड़ता है। यह हैरानी की बात है। आज जो आदमी ठीक

से शिक्षित है, जो आदमी ठीक से सोच विचार करता है वह आदमी अचानक अधार्मिक क्यों हो जाता है ? यह सोचने जैसी बात है । हम कहेंगे, यह शिक्षा गलत है, हम कहेंगे कि ये तर्क गलत हैं जो आज लोगों को दिये जा रहे हैं कि लोग अधार्मिक हो रहे हैं । नहीं ऐसा नहीं है । बात उल्टी हो गयी है, बात ऐसी हो गयी है कि धर्म अब वैज्ञानिक, सुनिश्चित होने की चेष्टा कर रहा है । और जब सुनिश्चित होने की चेष्टा धर्म करेगा तो निश्चित ही विचारशील लोग बंधी हुई धाराओं के बाहर हो जायेंगे ।

धर्म अब वैज्ञानिक हो सकता है, क्योंकि विज्ञान अब विकसित हुआ है । जैसे आज से सौ साल के पहले का वैज्ञानिक ईश्वर को इन्कार करता था, लेकिन आज का वैज्ञानिक उतनी हिम्मत से ईश्वर को इन्कार नहीं कर सकता है । आइन्स्टीन ने मरने के पहले कहा था कि जब मैंने विज्ञान की खोज शुरू की थी तो मैं सोचता था कि आज नहीं कल सब जान लिया जायेगा । और आइन्स्टीन शायद मनुष्य जाति में पैदा हुए उन थोड़े से लोगों में से एक है जिसने सर्वाधिक जाना है । मरने के दो या तीन दिन पहले आइन्स्टीन ने अपने एक मित्र को कहा कि जो भी मैंने जाना है, आज मैं कह सकता हूं कि उससे सिर्फ मुझे मेरे अज्ञान का पता चलता है, और कुछ भी पता नहीं चलता । और जो जानने को शेष रह गया है, वह इतना ज्यादा है कि जो हमने जान लिया है, उसकी तुलना भी नहीं की जा सकती ।

मरने के पहले आइंस्टीन ने कहा कि अब मैं रहस्यवादी की तरह मर रहा हूं, एक वैज्ञानिक की तरह नहीं । मुझे जगत रोज-रोज ज्यादा मिस्टीरियस, ज्यादा रहस्यपूर्ण होता चला गया है । जितना ही मैंने खोज की है, उतना ही मैंने पाया है कि खोज करने को और भी ज्यादा आयाम मिल गये हैं और डायमेंशंस खुल गये हैं । जितने दरवाजे मैंने खोले, पाया कि वे और बड़े दरवाजों पर पहुंचाते हैं, जितने रास्ते मैंने पकड़े, पाया कि वे और बड़े राजपथों पर पहुंचा देते हैं । जितनी कुंजियां मैंने पायीं, उनसे जो मैंने ताले खोले, पाया कि और बड़े ताले आगे लटके हुए हैं ।

एडिसन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जब मैंने सोचना शुरू किया तो मैं समझता था कि जगत एक वस्तु है । लेकिन अब मैं कह सकता हूं कि जगत वस्तु की तरह मालूम नहीं पड़ता, बल्कि एक विचार की तरह मालूम पड़ता है । अगर जगत एक विचार है तो विज्ञान ने छलांग लगा ली धर्म में और जगत एक अनंत रहस्य है तो हमने परमात्मा शब्द का उपयोग किया हो या न किया हो, हम परमात्मा के द्वार के पास खड़े हो गये हैं । और जगत हमारे ज्ञान से नहीं सुलझता, सिर्फ जानने से नहीं सुलझता, तो बहुत देर नहीं है, जब हम यह बात कहेंगे कि जानने से नहीं

सुलझेगा, होने से सुलझेगा। नॉलेज (Knowedge) काफी नहीं है, बीइंग (Being) की जरूरत पड़ गयी है। इतना काफी नहीं है कि हम दूर खड़े होकर देखें, जरूरी हो गया है कि हम एक हो जायं, तन्मय हो जायं, डूब जायं और जानें। शायद जानने का अब एक ही रास्ता है, वह है 'होना'। **विज्ञान अब धर्म के लिए रास्ता खोज रहा है। लेकिन कला भी आ चुकी है दुनिया में और मैं मानता हूं कि कला तब आयेगी जब बड़े व्यापक पैमाने पर धर्म आ जायेगा।** तो फिर कला के नाम पर जो आया है, वह क्या है ?

कला के नाम पर निन्यानबे प्रतिशत तो वासना का उपहार है। नाइन्टी नाइन परसेंट – चाहे काव्य हों, चाहे चित्र हों, चाहे मूर्तियां हों, चाहे संगीत हो, कला के नाम पर अभी जो भी पृथ्वी पर है, वह मनुष्य की वासनाओं को उत्तेजना देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कह रहा हूं – निन्यानबे प्रतिशत। चाहे **कालिदास** के ग्रन्थ और चाहे **भवभूति** और चाहे **बायरन** की कविताएं हों और चाहे **शेली** की। पृथ्वी पर जो भी कला के नाम पर अब तक आया है, वह मनुष्य की इंद्रियों को उत्तेजित करने का काम कर रहा है और कुछ नहीं कर रहा है। असल में धर्म के बाद ही वास्तविक कला का जन्म हो सकता है, लेकिन अभी धर्म का ठीक जन्म ही नहीं हो पाया है।

एक प्रतिशत मैंने छोड़ दिया है। निन्यानवे प्रतिशत कला के नाम पर सिर्फ मनुष्य की वासनाओं का विस्तार है। और एक प्रतिशत ? एक प्रतिशत में कुछ थोड़ा सा हिस्सा उनका है, जिन्होंने धर्म को जाना और कला को जन्म दिया। जैसे, मीरा के भजन में है। तो मीरा के भजन साधारण भजन नहीं हैं। मीरा के भजन एक धर्म की अनुभूति से प्रगट हो रहे हैं। एक अनुभूति है भीतर, वह फिर अभिव्यक्त हो रही है। कुछ पाया गया है और अब बांटा जा रहा है। आमतौर से लोग समझते हैं कि मीरा ने भजन गा-गा कर भगवान को पा लिया। मैं नहीं समझता। मीरा ने भगवान को पाकर भजन गाने शुरू किये। क्योंकि भजन को गाकर कोई भगवान को कैसे पा सकता है ? इतना सस्ता भगवान ! कि आप भजन गायेंगे और भगवान को पा लेंगे ? नहीं मीरा का भजन गाना भगवान को पाने का रास्ता नहीं है, भगवान को पाने की जो फुलफिलमेंट है, जो तृप्ति है उसकी अभिव्यक्ति है, धन्यवाद है, साधना नहीं है। चैतन्य नाच रहे हैं, वह नृत्य कोई भगवान को पाने के लिए नहीं है, नहीं तो सभी नाचने वाले भगवान को पा लें और चैतन्य से अच्छे नाचने वाले जमीन पर हैं और मीरा से अच्छे गाने वाले लोग जमीन पर हैं। लेकिन चैतन्य के नाच की बात और है। चैतन्य की यह थिरक, भगवान को पाने के लिए

नहीं, भगवान को पा लेने की थिरक है। यह भगवान समा गया है भीतर। **अब यह चैतन्य नहीं नाच रहे हैं, अब यह भगवान ही नाच रहा है**। अब यह प्याली भर गयी है और ऊपर से बह रही है। अब यह बहती हुई प्याली से जो कला पैदा होगी, वह बात अलग है।

कृष्ण की बांसुरी – कृष्ण से अच्छे बांसुरी बजाने वाले हुए हैं, हो सकते हैं। शायद प्रतियोगिता में कृष्ण बांसुरी बजानें में जीतेंगे कि नहीं जीतेंगे, यह पक्का नहीं कहा जा सकता। लेकिन फिर भी कृष्ण की बांसुरी का कोई मुकाबला नहीं है। बांसुरी के तल पर कृष्ण को जीतने वाले लोग हो सकते हैं, लेकिन कृष्ण के तल पर कोई मुकाबला नहीं है। क्योंकि जहां से ये बांसुरी के स्वर आते हैं, वहां अब कृष्ण नहीं हैं, वहां अब परमात्मा है। यह बांसुरी कोई खबर दे रही है, यह बांसुरी, भीतर जो बजा है उसे बाहर फैला रही है। भीतर जो अनगूंज पैदा हुई है वह उसे बाहर पहुंचा रही है।

एक प्रतिशत कला ऐसी है जिसे हम कला कह सकें। बाकी निन्यानबे प्रतिशत कला, सिर्फ मनुष्य की वासनाओं की सेवा से ज्यादा नहीं है। और इस निन्यानबे प्रतिशत कला में, मैं उस कला की भी गिनती करना चाहूंगा जो वासना के विपरीत खड़ी है। इसे थोड़ा समझना मुश्किल पड़ेगा। क्योंकि वासना के खड़े होने के दो ढंग हैं। एक तो वासना सीधी खड़ी होती है जिससे हम परिचित्त हैं। और कभी-कभी वासना शीर्षासन भी करती है जिससे हम परिचित नहीं हैं। वासना जब शीर्षसन करती है, तब हम समझते हैं कि यह आध्यात्मिक कला हो गयी। नहीं, वासना के शीर्षासन करने से भी वासना वासना ही रहती है, आध्यात्मिक नहीं हो जाती।

अब जैसे उदाहरण के लिए मैं आपको कहूं – एक चित्र शायद इस हॉल में मैंने देखा। उस चित्र में एक सुन्दर युवती का चित्र है। युवा। साथ में एक बूढ़ी स्त्री का चित्र है। और नीचे केप्शन है, नीचे शीर्षक दिया हुआ है जिसका कुछ मतलब ऐसा है कि जवानी बहुत देर नहीं रुकती और बुढ़ापे पर ध्यान होना चाहिए। लेकिन इसको मैं आध्यात्मिक नहीं कहूंगा। क्योंकि यहां भी जो सोचने का ढंग है वह जवानी पर ही खड़ा है। और अगर बुढ़ापे की निन्दा की जा रही है तो सिर्फ इसलिए कि जवानी ज्यादा दिन नहीं टिकती। अगर ज्यादा दिन टिके तो ? फिर इस चित्र का क्या होगा ? आज नहीं कल, विज्ञान रास्ते खोज लेगा कि बुढ़ापा नहीं टिकेगा, जवानी टिकेगी। फिर इस चित्र का क्या होगा ? और अभी हम जिस आदमी से कह रहे हैं कि जवानी ज्यादा दिन नहीं टिकती, बढ़ापे पर

ख्याल रखो, उस आदमी को दूसरा ख्याल भी आ सकता है कि जो चीज ज्यादा देर नहीं टिकती, उसको ज्यादा भोग लो।

ये दोनों सम्भावनाएं हैं। और फिर आप जो जोर दे रहे हैं, वह यही दे रहे हैं न, कि जवानी ज्यादा देर नहीं टिकती, लेकिन जवानी आपको भी कीमती है, और बुढ़ापा आपको भी कीमती नहीं है। लेकिन धार्मिक कला बुढ़ापे की भी कीमत मानती है। बुढ़ापे का अपना सौंदर्य है। किसने कहा कि बुढ़ापे में सौंदर्य नहीं है? बचपन का अपना सौंदर्य है, जवानी का अपना सौंदर्य है, बुढ़ापे का अपना सौंदर्य है। और धार्मिक आदमी के लिए जन्म ही सुन्दर नहीं है, मृत्यु का भी अपना सौंदर्य है। जब सूबह सूरज ऊगता है तभी सून्दर नहीं होता, जब सांझ डूबता है तब भी सुन्दर होता है। और अगर कोई आदमी सच में ढंग से बूढ़ा हो जाय, बहुत कम लोग हो पाते हैं, क्योंकि जवानी इतने जोर से पकड़ लेती है कि आदमी ठीक से बूढ़ा नहीं हो पाता। अगर कोई आदमी ठीक से बूढ़ा हो जाय तो बूढ़े के बराबर सुन्दर जवान कभी भी नहीं हुआ है। क्योंकि जवानी में उत्तेजना है, जवानी में आंधियां हैं बुढ़ापे का सौंदर्य बड़ा शान्त सौंदर्य है। बुढ़ापे का सौंदर्य संध्या का सौंदर्य है।

सुबह तो जिन्दगी के तनाव भी हैं। दिन भर का उपद्रव शुरू हो रहा है। साँझ सब उपद्रव शांत हो गया और रात का विश्राम निकट आ रहा है। सांझ के सूरज का मुकाबला क्या है? पक्षी लौटने लगे हैं घर को, वृक्ष मौन और निद्रा में जाने लगे हैं, सूरज डूबने लगा है, अन्धेरा पृथ्वी को घेर लेगा। सब चुप हो जायेगा, सब परमात्मा में एक अर्थ में लीन हो जायेगा। बुढ़ापा भी संध्या है। लेकिन जब हम दीवाल पर जवानी का चित्र बनाते हैं और बुढ़ापे का चित्र बनाते हैं और कहते हैं सावधान, बुढ़ापा आ रहा है, तो दो बातें पक्की हैं। जवानी हमारे लिए कीमती है। और बुढ़ापे के हम दुश्मन हैं।

यह आध्यात्मिक चित्र नहीं हो सकता है। यह सिर्फ पर्वर्टेड पैशन है, यह सिर्फ शीर्षासन करती हुई वासना है और वासनाग्रस्त आदमी इसमें से यह मतलब नहीं निकालेगा जो वासना के दुश्मन ने निकाला है। वासनाग्रस्त इस चित्र को देखकर एकदम दौड़ पड़ेगा। वह कहेगा, बुढ़ापा आ रहा है। दिन जल्दी डूबने को निकट है, जो भी करना है कर लो। वह कहेगा अब जल्दी पियो, जल्दी खाओ, जल्दी नाचो, क्यों कि बुढ़ापा करीब आ रहा है। और इन दोनों का तर्क एक जैसा है, इस तर्क में फर्क नहीं है। इन दोनों का तर्क यही है कि बुढ़ापा आ रहा है। मौत आ रही है। नहीं, इसको मैं आध्यात्मिक चित्र नहीं कहूंगा।

आध्यात्मिक कला इस जमीन पर बहुत पैदा नहीं हो सकी है। या तो वासनाग्रस्त कला है, या वासनाविरोधी कला है। और जो वासना के विरोध में है वह भी वासना-ग्रस्त है। जो दुश्मन है वासना का, वह भी वासनाग्रस्त है। जो कह रहा है कि सुख क्षण-भंगुर है, यह छोड़ो, वह असल में सुख छोड़ने को नहीं कह रहा है, वह यह कह रहा है कि क्षणभंगुर है, इसलिए छोड़ दो। लेकिन अगर शाश्वत हो तो ? तो फिर छोड़ना नहीं है। इसलिए जमीन पर स्त्री को छोड़ो, स्वर्ग में अप्सरा को भोगो। यह धार्मिक आदमी है ! जमीन पर शराब छोड़ो, स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं, उनमें नहाओ ! जमीन पर स्त्रियों से बचो और स्वर्ग की अप्सराएं जो सोलह साल से ज्यादा उम्र की होती ही नहीं, उनकी तैयारी करो। यह आदमी धार्मिक है ! यह आदमी कह रहा है, जमीन पर कामनाएं छोड़ो, स्वर्ग में कल्प-वृक्ष लगे हैं, उनके नीचे बैठो और कामनाएं करो और पूरी हो जायं।

बड़े मजे की बात है कि कामनाएं इसलिए छोड़ो कि कल्प-वृक्ष मिल जाय। तो यह कामना छोड़ने वाले की वृत्ति है ? नहीं, यह तो मुझे लगता है कि भोगी से भी ज्यादा भोगी मालूम पड़ता है। भोगी तो बेचारा क्षणभंगुर से राजी है, बड़ा त्यागी है। यह आदमी कह रहा है कि हम क्षणभंगुर को छोड़ते हैं, क्योंकि हम शाश्वत को चाहते हैं। हम रमणी को छोड़ते है, क्योंकि हम तो मोक्ष-रमणी को चाहते हैं। हम जमीन की स्त्रियों को छोड़ेंगे क्योंकि वे बूढ़ी हो जाती हैं, हम तो स्वर्ग की अप्सराएं चाहते हैं, जो कभी वृद्ध नहीं होतीं। हम सब छोड़ते हैं क्योंकि यह आते हैं और चले जाते हैं। हम ऐसे सुख चाहते हैं जो आयें और कभी न जायें। यह आदमी आध्यात्मिक नहीं है, यह सुखवादी है। यह हैडोनिस्ट पार एक्सीलेंस है, इसका मुकाबला ही नहीं सुखवाद का। इस सुखवादी ने स्वर्ग बनाये हैं।

यह धार्मिक नहीं है। यह प्रलोभन दे रहा है, यह कह रहा है कि यहां की स्त्रियां छोड़ो तो और अच्छी स्त्रियां इन्तजार कर रही हैं। यहां का धन छोड़ो तो अपार धन, अनंत धन इंतजार कर रहा है। यहां का शरीर छोड़ो और सुन्दर देह मिल जायेगी—देवों की देह। नहीं, यह धार्मिक चिन्तन नहीं है, यह वासना शीर्षासन करती हुई खड़ी हो गयी है। इसलिए जो आदमी समझना चाहता हो, वह थोड़ा ठीक देख ले कि इस तरह के सारे के सारे चिन्तन के पीछे हमारी अतृप्त कामना ही मांग कर रही है। दमित की हुई कामना ही मांग कर रही है। यह ठीक नहीं है। इससे कोई अध्यात्म पैदा नहीं होगा। **आध्यात्मिक कला तो आध्यात्मिक चित्त से पैदा होती है और आध्यात्मिक चित्त परमात्मा का अनुभव नहीं हो तो नहीं होता।**

इसलिए मैं मानता हूं कि अभी वास्तविक कला का पृथ्वी पर जन्म सबसे कम हुआ है। विज्ञान थोड़ा वास्तविक हुआ है, धर्म और भी कम वास्तविक हुआ है, कला तो बहुत ही मुश्किल है वास्तविक होने में। अभी वे महाकवि पैदा नहीं हुए हैं। कभी-कभी झलक मिलती है किसी उपनिषद् में, कभी झलक मिलती है किसी गीता में, कभी झलक मिलती है बाइबिल के किसी वचन में, कभी झलक मिलती है कबीर की किसी पंक्ति में, लेकिन झलक ही मिलती है। अभी वे महाकाव्य पैदा नहीं हुए, अभी वे महान मूर्तियां पैदा नहीं हुईं। कभी झलक अजन्ता में दिखती है, कभी एलोरा में, लेकिन वह झलक है, पृथ्वी अभी उनसे भर नहीं गयी। अभी कला के नाम पर जो चल रहा है वह सब रोग है, बीमारी है। दो तरह के रोग हैं– एक, जो वासना को उभाड़ रहे हैं, एक जो वासना को दबाने की कोशिश में लगे हैं, लेकिन दोनों की दृष्टि वासना पर है।

कला, अगर ठीक से समझें तो जीवन का चरम उत्कर्ष है। फिर जरूरी नहीं है कि आप मूर्ति ही बनायें, फिर जरूरी नहीं है कि आप चित्र ही रंगें, फिर जरूरी नहीं है कि आप बांसुरी ही बजायें। कुछ भी जरूरी नहीं है। फिर आपका पूरा जीवन ही सृजनात्मक होगा। आप चलेंगे तो भी उसमें काव्य होगा। जब बुद्ध चलते हैं पृथ्वी पर तो उनके कदमों की आहट में भी काव्य होता है। और जब जीसस शूली पर लटके हुए लोगों की तरफ देखते हैं तो उनकी आंख में भी कविता होती है। जरूरी नहीं है कि जीसस चित्र बनायें। बनाना चाहें तो बना सकते हैं। वैसे जेन फकीरों ने जापान में बहुत चित्र बनाये हैं। कोई मुकाबला नहीं उनके चित्रों का। लेकिन वह ध्यान के बाद बनाये हैं। चीन में ताओइस्ट फकीरों ने बड़ी मूर्तियां बनायीं हैं, लेकिन वह ध्यान के बाद बनायी हैं। उन मूर्तियों में, जेन फकीरों के चित्रों में, सूफी दरवेशों के नृत्य में, कबीर और दादू के गीत में, नानक की पक्तियों में, कृष्ण की बांसुरी में, उपनिषद् की पक्तियों में कभी-कभी झलक आयी है। लेकिन **पृथ्वी अभी कला से वंचित है। मौन भी काव्य हो सकता है**। सच तो यह है कि **परम अर्थों में जब कविता पूरी होती है और कला पूरी होती है तो मौन ही हो जायेगी**।

लेकिन, हम जिसको कला समझते रहे हैं उसे मैं कला नहीं कह रहा हूं। हम जिसे कला समझते रहे हैं वह ठीक वैसे ही है जिसे हम मनुष्य की वासनाओं को सहयोग देनेवाली कहें। या मनुष्य की वासनाओं को दबाने वाली कहें। लेकिन कला का का केन्द्र वासना रही है। अभी तक कला का केन्द्र आत्मा नहीं हो पायी है। कला का केन्द्र आत्मा तभी हो सकता है जब कलाकार देने को उत्सुक न हो, कुछ बनाने को उत्सुक न हो, कलाकार से कुछ बनना शुरू हो जाय, कलाकार से कुछ देना शुरू हो

जाय । कलाकार के पास इतना हो कि बांटने के सिवाय उसके पास कोई रास्ता न रहे। लेकिन पास में होना चाहिए न । हम वही दे सकते हैं जगत को, जो हमारे पास है। जो हमारे पास नहीं है वह हम जगत को कैसे दे सकते हैं ?

इसलिए एक बड़ी अनूठी घटना घटती है । किसी कवि की कविताएं पढ़ें तो ऐसा लगता है कि पता नहीं, यह आदमी परमात्मा के मन्दिर में प्रविष्ट हो गया होगा । और वह कवि कहीं आपको होटल में बैठा मिल जाय तो बड़ी मुश्किल होती है । मुश्किल यह होती है कि ये कविताएं इसी आदमी की थीं ? चित्रकार का चित्र देखकर ऐसा लगता है कि किस मोक्ष की खबर लाया है । लेकिन अगर वह चित्रकार खुद मिल जाय तो बड़ी मुश्किल होती है कि इस चित्रकार ने वह चित्र बनाया है ? इस चित्रकार में तो कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता जिससे उस चित्र का जन्म हो जाय । तब यह चित्र क्या है, यह क्रिएशन नहीं है, सिर्फ कंशट्रक्शन है ।

इस फर्क को समझ लेना ठीक है । सृजन और निर्माण में बड़ा फर्क है । निर्माण के लिए किसी का कलाकार होना जरूरी नहीं है । निर्माण के लिए सिर्फ शिल्पी, टेकनीशियन होना जरूरी है । एक आदमी रंग फैलाना जानता है, रेखाएं बनाना जानता है । स्कूल हैं, कालेज हैं, जहां रंग फैलाना और रेखाएं बनाना सिखाया जाता है । एक आदमी ने रेखाएं बनानी सीख ली हैं, रंग भरना सीख लिया है । यह आदमी टेकनीशियन है, आर्टिस्ट नहीं । यह आदमी चाहे तो कुछ भी बना सकता है । अगर इससे सुन्दर स्त्री बनवानी हो तो सुन्दर बना देगा, कुरूप स्त्री बनवानी हो तो कुरूप बना देगा । वासना भरी मूर्ति बनवानी हो तो वासना भरी मूर्ति बना देगा और अगर वासना के विपरीत मूर्ति बनानी है तो वह बना देगा । यह कुशल है, कलाकार नहीं । इस आदमी के पास टेकनीक है इसलिए कोई चीज निर्मित कर सकता है । लेकिन क्रिएटिविटी, कंशट्रक्शन नहीं है । सृजन बड़ी और बात है । हो सकता है कि सर्जक के पास कोई टेकनीक ही न हो ।

मैं सोच भी नहीं पाता कि कृष्ण ने किसी स्कूल में जाकर बांसुरी बजाना सीखा हो । मैं सोच भी नहीं पाता कि मीरा किसी स्कूल में नाच सीखने गयी होगी । मैं सोच भी नहीं पाता, और मुश्किल दीखता है कि चैतन्य ने कहीं भी शिक्षा ली होगी, भजन की, और मृदंग पीटने की । चैतन्य की सारी शिक्षा तो तर्क की थी । चैतन्य ने पढ़ा तो तर्क शास्त्र, चैतन्य थे तो एक पंडित, चैतन्य थे तो एक अद्भुत विचारक लेकिन, एक दिन विचार थक गया और एक दिन तर्क उस जगह आ गया जहां तर्क की आगे गति नहीं है । और चैतन्य ने तर्क और विचार को फेंक दिया और मृदंग लेकर सड़कों पर नाचने लगे ।

टेक्नीशियन, शिल्पी और कलाकार के फर्क को ठीक से समझ लेना जरूरी है। शिल्पी वह बनाता है जो विचार से बनाना चाहता है। सर्जक वह देता है जो उसके हृदय में भर गया है। शिल्पी मस्तिष्क से जीता है, कलाकार हृदय और आत्मा से जीता है। इसलिए तकलीफ हो रही है। अच्छा कवि हो सकता है, लेकिन अच्छा काव्य उससे पैदा होगा, यह जरूरी नहीं है। और एक आदमी अच्छा कवि न हो, लेकिन अच्छा काव्य उससे पैदा हो सकता है।

सब उपनिषद् के ऋषि कोई बड़े कवि रहे होंगे ऐसा नहीं मालूम पड़ता। उन्होंने कोई छन्द और तुक का हिसाब रखा होगा ऐसा मालूम नहीं पड़ता। इतने छोटे दिमाग नहीं हो सकते जो छन्द और तुक का हिसाब रखते हों। सब हिसाब छोड़कर गैर हिसाब में जो कूद गये हों, वह इस तरह के छोटे हिसाब नहीं रख सकते। लेकिन, उनसे जो पैदा हुआ है वह अमृत-काव्य है। उस काव्य में बात ही कुछ और है। वह सिर्फ कविता नहीं है। वह सिर्फ शब्दों की जमावट नहीं है। वह सिर्फ मात्राओं का हिसाब नहीं है, वह हृदय का बहाव है। कुछ भीतर से बहा है और फैल गया है। उस बहाव में ही काव्य है। रेल की गाड़ियाँ चलती हैं पटरियों पर, ठीक लोहे ही पटरियों पर दौड़ती हैं। नदियां रेल की पटरियों जैसी नहीं दौड़ रही हैं। बेढ़ंगे हैं उनके रास्ते, अनजान अपरिचित हैं उनके मार्ग। कुछ पता नहीं, बना बनाया रेडीमेड कोई रास्ता ही नहीं है गंगा का, लेकिन गंगा के दौड़ने में जिन्दगी है, रेल में जिन्दगी नहीं हो सकती।

टेक्नीशियन रेल की पटरियों पर दौड़ता है, सीखे सिखाये मार्गों का उपयोग करता है, कलाकार अनजान, अपरिचित, अनजोन में प्रवेश करता है। उसे कुछ पता नहीं है कि क्या होगा। जिस समय कोई टेक्नीशियन किसी चित्र को बनाता है तो वह जानता है कि वह क्या बना रहा है। वह जानता है, क्या बनाने वाला है। एक प्लानिंग है, एक योजना है, लेकिन जब **एक सर्जक एक चित्र को बनाता है तो वह उतना ही चौंकता है बनाने के बाद जितना देखने वाले चौंकते हैं।** उसको खुद भी पता नहीं है कि क्या बन जायेगा। **वह सिर्फ परमात्मा के हाथों में अपने को छोड़ देता है इसलिए बड़े सर्जक कभी नहीं कहते कि उन्होंने कुछ बनाया है।** वे कहते हैं, हमारे द्वारा कुछ बनाया गया है। वे सिर्फ मीडियम हैं, माध्यम रह जाते हैं।

इसलिए अंतिम बात आपसे कहूं कि जो व्यक्ति परमात्मा के लिए माध्यम बन जाता है, जैसे कबीर ने कहा है, मैं तो सिर्फ बांस की एक पोंगरी हूं, मैं कुछ और नहीं हूं। मेरे स्वर नहीं हैं, मैं तो सिर्फ बांस की एक पोंगरी हूं। स्वर तो परमात्मा के हैं। हां, यह हो सकता है कि मेरी पोंगरी ठीक काम न करे और स्वर बेसुरे सुनायी पड़ें।

यह गलती मेरी होगी। लेकिन स्वर अगर सुन्दर हों और स्वर अगर कानों को नचा दें तो धन्यवाद परमात्मा को देना। कबीर कहते हैं, मैं बांस की पोंगरी हूं। **कला उस दिन पैदा होती है जिस दिन व्यक्ति बांस की पोंगरी हो जाता है।** जिस दिन वह कहता है, मैं नहीं हूं, तू ही है। और जिस दिन उसकी अंगुलियां उसके अहंकार का काम नहीं करतीं बल्कि परमात्मा का काम करने लगती हैं।

एक चित्रकार ने रामकृष्ण परमहंस के फोटो उतारे हैं और रामकृष्ण के पास वह एक चित्र को बनाकर लाया है। रामकृष्ण का ही चित्र है और जब वह चित्र आया तो कोई दस पच्चीस लोग मौजूद थे रामकृष्ण के पास। रामकृष्ण ने वह चित्र देखा, वह उठ कर नाचने लगे और उस चित्र के पैर पड़ने लगे। रामकृष्ण के ही चित्र हैं, पास बैठे भक्तों ने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं। भक्त अपने गुरुओं की बड़ी रक्षा करते हैं। क्योंकि भक्तों को सदा डर रहता है कि गुरू कुछ गड़बड़ न करें। भक्तों ने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं? अपने ही चित्र के पैर पड़ते हैं। रामकृष्ण ने कहा, भली याद दिलायी, मैं तो भूल ही गया कि मेरा चित्र है। मुझे तो सिर्फ इतना ही लगा कि कैसा समाधिस्थ है। समाधि का चित्र, इक्सटेसी का, तो मैं नाचने लगा। और मैंने पैर पड़ लिया, तुमने अच्छी याद दिलायी। नहीं तो लोग मुझ पर बहुत हंसते।

अब इस आदमी को अपना चित्र भी पहचान में नहीं आया। बात क्या है? असल में अपनी पहचान ही मिट गयी है, नहीं तो पहचान में कैसे न आता। यह आदमी अब सिर्फ बांस की पोंगरी रह गया है। अब यह अपने में भी परमात्मा को देख पाया और पैर पड़ पाया। यह अपने चित्र में भी अपने को न देख सका, समाधि दिखायी पड़ी। रामकृष्ण ने कहा, हजारों साल तक लोग इस चित्र के पैर पड़ेंगे क्योंकि यह समाधि का चित्र है। एक सज्जन ने कहा, आप ऐसी बात न कहें। लोग क्या कहेंगे कि अपने ही मुंह से, कैसा अहंकारी आदमी रहा होगा कि कहता है कि लोग मेरे चित्र के, हजारों साल पैर पड़ेंगे। रामकृष्ण ने कहा, तुमने पता नहीं कैसे सुन लिया। "मेरे" तो मैंने कहा ही नहीं। मैंने कहा, इस चित्र के। मुझसे क्या लेना-देना है। यह समाधि का चित्र है।

कला जन्मती है उस दिन, जिस दिन कलाकार मर जाता है। जब तक कलाकार है, तब तक कला का जन्म नहीं होता। जब अहंकार है तब कला का जन्म नहीं होता। जब तक मैं हूं, तब तक क्रिएशन नहीं है। परमात्मा इतने बड़े जगत को बना पाया क्योंकि परमात्मा बिल्कुल नहीं है। हम एक छोटा सा चित्र बना लेंगे और पूरी तरह हो जायेंगे। हम एक छोटी सी मूर्ति खोद लेंगे और पूरी तरह हो जायेंगे।

एक बहुत बड़ा मूर्तिकार हुआ। उसने एक पत्थर को खोदकर मूर्ति बनायी। राह से जो लोग भी निकलते हैं वे धन्यवाद देते हैं कि अद्‌भुत हो तुम, कितनी सुन्दर मूर्ति बनायी। वह चित्रकार कहता है कि क्या नासमझ ही इस रास्ते से गुजरते हैं? मैंने तो मूर्ति बनायी ही नहीं। मैं यहां से गुजरता था, इस पत्थर में छिपी मूर्ति ने मुझे पुकारा। मैंने तो सिर्फ बेकार के पत्थरों को अलग किया है। मूर्ति तो छिपी थी, वह प्रगट हो गयी है। मैंने सिर्फ बेकार पत्थरों को अलग किया है। मूर्ति तो छिपी थी, वह प्रगट हो गयी है। मैंने सिर्फ बेकार पत्थरों को अलग कर दिया है छेनी से। मूर्ति तो पत्थर में छिपी थी। मैं यहां से गुजरता था, मूर्ति ने मुझे पुकारा कि कहां जा रहे हो? थोड़े से गलत पत्थर अलग कर लो।

और अब मैं कह सकता हूं कि जिसने मूर्ति के भीतर से मुझे बुलाया, उसी ने मेरे भीतर से सुना। अन्यथा मैं सुन कैसे सकता था? अगर पत्थर के भीतर बोलनेवाला और हो, और मेरे भीतर सुननेवाला और हो तो कम्यूनिकेशन कैसे होगा, संवाद कैसे होगा? मैं सुन सका, क्योंकि जो मूर्ति के भीतर छिपा है वही मेरे भीतर छिपा है। उसने मुझे खबर दी, मैंने गैरजरूरी पत्थर भर अलग कर दिये।

मूर्तिकार मर जाय तो मूर्ति पैदा होती है। चित्रकार मर जाय तो चित्र जन्मता है। कवि मर जाय तो कविता पैदा होती है। कलाकार नहीं हो जाय तो कला का जन्म होता है। **नहीं हो जाने की कला का नाम ध्यान है।** इसलिए आखिरी दो-चार बातें ध्यान के संबंध में आपसे कहूं।

ध्यान का मतलब नहीं है कि आप कुछ करते हैं। लोग कहते हैं, मैं ध्यान करता हूं। जब तक मैं है तब तक तो ध्यान नहीं होगा। लोग कहते हैं, मैं ध्यान करता हूं। जब तक करना है तब तक ध्यान नहीं हो सकता। कभी आपने सोचा, जब आप कहते हैं, मैं प्रेम करता हूं, तो आप बड़ी गलत भाषा बोलते हैं। प्रेम भी किया जा सकता है! कभी दुनिया में किसी ने प्रेम किया है, सिर्फ अभिनेताओं को छोड़कर? और अगर आप भी करते हैं तो अभिनय ही करते हैं, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता कि मंच आपकी कितनी बड़ी है। और अभिनेता कितने स्थायी हैं। इसमें बहुत फर्क नहीं पड़ता। प्रेम किया नहीं जा सकता। प्रेम कोई कृत्य नहीं है, एक्ट नहीं है। कैसे करियेगा प्रेम? इसलिए अगर मैं आपसे कहूं कि चलिये शुरू करिये प्रेम, आप कैसे करियेगा! आप अचानक पायेंगे कि नहीं होता। आप कहेंगे कि कैसे कर सकता हूं।

प्रेम कोई कृत्य नहीं है, एक्शन नहीं है। प्रेम एक स्टेट आफ माइण्ड है, चित्त की एक दशा है। वह किया नहीं जाता, होता है। इसलिए जो लोग प्रेम में गहरे उतरेंगे, वे कहेंगे, प्रेम हो गया। वे नहीं कहेंगे कि प्रेम किया। और दूसरी मजे की बात है कि जब प्रेम होता है तब आप नहीं होते और जब तक आप होते हैं, तब तक प्रेम नहीं होता। जब आप अपने प्रेमी के पास होते हैं तब आप होते हैं? नहीं, प्रेमी हो सकता है, आप नहीं होते। आप बिल्कुल मिट गये होते हैं। आप होते ही नहीं, एक शून्य रह गया होता है।

इसलिए दो प्रेमी जब मिलते हैं तब कितना विचार करके आते हैं कि यह बात करेंगे, यह बात करेंगे, वह बात करेंगे। लेकिन जब मिलते हैं तब चुप हो जाते हैं, सब बातें खो जाती हैं। ऐसे ही जब तक घड़ा खाली होता है तो आवाज करता है और जब भर जाता है तो चुप हो जाता है। दो प्रेमी मिलकर आज तक इतना भी नहीं कह पाये कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। आप कहेंगे नहीं, बहुत प्रेमी कहते हैं कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। ध्यान रखना, जब कोई कहे, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं तो समझना कि प्रेम का क्षण जा चुका है। यह सिर्फ स्मृति है। जब प्रेम होता है तो इतने कहने का भी मन नहीं होता कि करता हूं, कि मैं हूं। जब प्रेम होता है तब प्रेम ही इतना होता है कि वहां मैं और तू को जगह नहीं रह जाती।

रूमी ने एक गीत लिखा है कि एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार को खटखटाता है। पीछे से आवाज आती है, कौन है तू? तो वह प्रेमी कहता है, मैं हूं, तुमने आवाज नहीं पहचानी? तो वह प्रेयसी कहती है कि जब तक तू है और तेरी आवाज है, और तेरी पहचान है, तब तक प्रेम के द्वार कैसे खुल सकते हैं। वह प्रेमी वापस लौट जाता है। वर्षों के बाद वापस आता है। फिर द्वार खटखटाता है। वह प्रेयसी पूछती है, कौन है तू, तो वह प्रेमी कहता है, अब तो मैं नहीं हूं। अब तो तू ही है। और रूमी कहते हैं कि द्वार खुल जाता है।

मैं नहीं कहूंगा। मैं मानता हूं कि रूमी ने जरा जल्दी द्वार खुलवा दिया। मैं तो कहूंगा कि वह प्रेयसी फिर कहती है कि जब तक तेरे लिए तू है तब तक मैं भी छिपा होगा। कहीं न कहीं गहरे में बैठा होगा, क्योंकि अगर मैं भीतर मर जाय तो बाहर तू भी मिट जाता है। ये मैं और तू एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहां तक मैं है, वहां तक तू है। इसलिए जो भक्त भगवान से कहता है कि तू ही है, मैं नहीं हूं वह घोषणा कर रहा है कि मैं पूरी तरह हूं। उसके

न करने में, इन्कार में भी उसका "मैं" मौजूद है। इन्कार करने को भी कम से कम मैं तो चाहिए ही।

नहीं, भक्त इतना भी नहीं कहता कि तू ही है, मैं नहीं हूं। भक्त कुछ कहता नहीं, बस रह जाता है। वह तू भी नहीं कहता, मैं भी नहीं कहता। वह चुप हो जाता है। इस चुप्पी का नाम ध्यान है। **यह चुप्पी** अगर **प्रेम से** उपलब्ध हो जाय तो उस **मार्ग का नाम भक्ति है**। यह चुप्पी अगर ज्ञान से उपलब्ध हो जाय तो उस **मार्ग का नाम ज्ञान** है। यह चुप्पी अगर **कर्म के मार्ग से** उपलब्ध हो जाय तो उस मार्ग का नाम कर्म है। और इस चुप्पी का नाम ध्यान है।

चुप हो जाय मेरा मैं, वह जो भीतर निरन्तर बोल रहा है मैं, वह श्वांस-श्वांस में बोल रहा है – आंख की पलक हिलती है तो मैं, पैर उठता है तो मैं, श्वांस लेता हूं तो मैं। सब तरफ वह जो मेरा मैं है वह चुप होता जायेगा, वह शांत होता जायेगा और एक घड़ी आ जायेगी कि मैं अपने भीतर खोज कर कह सकूं कि मैं कहां गया? मैं कहां हूं? तो ध्यान उपलब्ध होता है।

लेकिन, हम बड़े अद्भुत लोग हैं। सांसारिक आदमी का मैं तो होता ही है, जिसको हम धार्मिक कहते हैं, उसका और प्रगाढ़ता से होता है। एक गृहस्थ का तो मैं होता ही है, होना ही चाहिए। लेकिन जिसको हम संन्यासी कहते हैं, उसके मैं का कोई मुकाबला ही नहीं। संन्यासी का मैं और सघन होता है। भक्त को देखा है, सड़क पर उसकी अकड़ ही और है। क्योंकि वह टीका लगाये हुए है। जिसके माथे पर टीका नहीं, उसको वह नर्क भेजने की नजर से देख रहा है। जो मंदिर नहीं गया है, उसको सोच रहा है कि नर्क में सड़वा देगा। आश्चर्य है। ध्यान का अर्थ सिर्फ एक ही है कि मैं न रह जाय, लेकिन वह मैं बड़ा प्रगाढ़ होता चला जाता है।

मैं की तरकीबें अनन्त हैं। उसके रास्ते सूक्ष्म हैं। कहीं से भी भागो, मैं पकड़ लेता है। मैं से भी भागो तो पकड़ लेता है। और निर अहंकारी खड़े होकर बाजार में कहने लगता है कि मुझसे बड़ा निर अहंकारी कोई भी नहीं है। हद्द हो गयी, यह अहंकार की घोषणा है कि मुझसे बड़ा निर अहंकारी और कोई भी नहीं है। अहंकार के रास्ते सूक्ष्म हैं। वह धन होता है तो कहता है कि इतना है धन मेरे पास। वह धन को त्याग देता है, तो कहता है कि इतने धन को मैंने लात मार दी। लेकिन वह मैं पीछे खड़ा रह जाता है। वह संसार में भी अपने को भर लेता है, वह परमात्मा में भी अपने को भर लेता है। वह कहता है, मेरा परमात्मा सही है, तुम्हारा गलत है।

मेरा भी परमात्मा हो सकता है, वह भी मेरा पजेशन हो जाता है। अगर मेरे मंदिर में आग लगा दी तो मैं आपकी मस्जिद में आग लगा दूंगा। क्योंकि वह तुम्हारे परमात्मा का मंदिर है। मस्जिद वाला मंदिरों को तोड़ता जायेगा, मंदिर वाले मस्जिदों को तोड़ते जायेंगे। ईसाई हिन्दू को गलत समझेगा, हिन्दू ईसाई को गलत समझेंगे। गीता वाला कुरान को गलत समझेगा, कुरान वाला वेद को गलत समझेगा। यह क्या पागलपन है? लेकिन जहां मैं है वहां पागलपन होता ही है। असल में मैं के अतिरिक्त और कोई मेडनेस नहीं है। 'मैं' ही पागलपन है। मैं जितना बड़ा होता जाता है, हमारे भीतर पागलपन उतना सघन होता जाता है। मैं जितना विरल होता है हमारे भीतर, मैं उतना विदा होता जाता है। जिस दिन मैं नहीं रह जाता उस दिन हम पागल नहीं रह जाते, और जो पागल नहीं है, वह धार्मिक है। वह ध्यान को उपलब्ध होता है।

तो अंतिम बात, आपसे इतना ही कहूं कि जरा इस मैं के रास्ते को पहचानना ख्याल करके। इससे लड़ना मत, क्योंकि लड़ेंगे तो वह मैं कहेगा कि देखो, मैं लड़ रहा हूं। मत लड़ना, सिर्फ रास्ते पहचानना कि मैं कहां-कहां से आपको हाथ बढ़ाकर पकड़ लेता है। बस, सुबह से सांझ तक उसके रास्ते पहचानना और जब वह पकड़े, और जब वह आपके पैर को पकड़ ले और जब आप अकड़कर चलने लगें और जब आपकी रीढ़ को पकड़ ले और आप पद्मासन में बैठ जायं और जब आपके सिर को पकड़ ले और टीका लगा लें और जब मंदिर में आपको पकड़ ले और चाल बदल जाय तो जरा उसको पहचानना कि यह मैं पकड़ रहा है।

बुद्ध का एक वचन है कि जैसे घर में दिया जला हो तो चोर नहीं आते हैं और घर का पहरेदार जगा हो तब तो चोर का आना बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन पहरेदार सोया हो और घर का दिया बुझा हो तब तो घर चोरों का ही हो जाता है। ऐसे ही जब भीतर हमारा पहरेदार जगा हो, साक्षी जगा हो और देख रहा हो कि कहां-कहां से मैं पकड़ रहा है तो वह मैं का चोर आना बन्द हो जाता है। और जब हमारे भीतर चेतना का दिया जला हो, मौन का दिया जला हो, चुप्पी का दिया जला हो तो फिर चोर हमारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाता। **और एक ही चोर है, मैं।** उसने ही हमसे परमात्मा को छीन लिया है। छोटा-मोटा चोर नहीं है। बहुत बड़ा चोर है। क्योंकि जो परमात्मा को छीन सके, वह कोई साधारण चोर नहीं है। एक ही दीवाल है।

मैं एक बच्चे को देख रहा था एक रास्ते पर। वह एक बांस की छोटी सी पोंगरी बनाकर साबुन के बबूले उड़ा रहा था, पोंगरी को डुबा लेता था

साबुन के पानी में। फूंक मारता और बबूला बन जाता और आकाश में उड़ता था। सुबह का सूरज, साबुन का बबूला, सुबह की सूरज की किरणें, उसमें उठता हुआ बबूला और सूरज की किरणें सात रंगों में टूट जाती हैं, बबूले को पार करके। बड़ा सुन्दर हो जाता है। वह बच्चा उसे पकड़ने दौड़ता था, लेकिन वह बबूला ऊपर उठता जाता था। बड़ी मजे की घटना उस दिन मुझे दिखायी पड़ी। वह साबुन नीचे भी पड़ी थी, लेकिन सुन्दर न थी। वही साबुन की एक बूंद फैल कर सूरज की किरणों में बहुत सुन्दर हो गयी थी।

जिसे हम सौंदर्य कहते हैं, वह सब ऐसा ही सौंदर्य है। सब मिट्टी है जो सूरज की किरणों में फैलकर सुन्दर हो जाती है। कहीं फूल बन जाता है, कहीं आदमी बन जाता है, कहीं स्त्री बन जाती है, कहीं चांद बन जाता है। सब सूरज की किरणों में फैलकर सुन्दर हो जाता है। सौंदर्य नीचे पड़ी चीजों का ऊपर उठ जाना है। सौंदर्य अंधेरे में पड़ी चीजों का प्रकाश में आ जाना है। सुन्दर हो गयी थी बहुत, एक बूंद साबुन की। बर्तन में नीचे साबुन की बूंदें पड़ी थीं, सुन्दर न थीं। सूरज की किरणों में बहुत सुन्दर हो गयी थीं। और बड़ा आश्चर्य कि वह बबूला ऊपर उठ रहा है। ऐसा लगता था जैसे बबूला अपनी तरफ से ऊपर उठ रहा था।

आपने भी साबन के बबूले ऊपर उठते देखे होंगे, लेकिन आपको पता न होगा कि बबूला क्यों ऊपर उठता है। साबुन का बबूला इसलिए सिर्फ ऊपर उठता है कि बच्चे के मुंह से जो हवा निकलती है वह गर्म होती है बाहर की हवा से। ठण्डी हवा नीचे की तरफ गिरती रहती है। गरम हवा ऊपर की तरफ उठने लगती है। गरम हवा को जगह देने के लिए ठण्डी हवा मार्ग छोड़ देती है तो वह बबूला ऊपर उठने लगता है। हालांकि बबूला भी नीचे गिरना चाहता है। सब चीजें नीचे गिरना चाहती हैं। लेकिन गर्म हवा, विरल है।

आसपास की जो हवा है ज्यादा ठण्डी है, ज्यादा सघन है। आसपास की हवा ज्यादा इगोइस्ट है, ज्यादा अहंकार से भरी है। बबूले के पास अहंकार जरा विरल है। और वह ऊपर उठने लगता है। उसके पास मैं का भाव थोड़ा कम है। हवा थोड़ी कम सघन है। इसलिए ऊपर उठने लगता है। लेकिन एक और मजे की बात है, वह थोड़ी देर ही ऊपर उठता है। लेकिन जैसे-जैसे ऊपर उठता है बड़ा होता जाता है। जो भी चीज ऊपर उठती है, बड़ी होती चली जाती है। वह बबूला भी बड़ा होता चला जाता है क्योंकि उस पर दबाव हवा का कम होता जाता है और साबुन फैलती चली जाती है। फिर एक क्षण आता है कि साबुन का बबूला टूट

जाता है और हम कहते हैं, बबूला मर गया। वह बच्चा दूसरा बबूला बनाने में लग जाता है।

लेकिन क्या बबूला मर गया, क्या मर गया? उस साबुन की पतली सी फिल्म के भीतर जो हवा थी, वह मर गयी? वह अब भी है। वह साबुन की पतली सी फिल्म जो उस हवा के चारों तरफ फैल गयी थी, वह मर गयी? वह अब भी है। मर कुछ भी नहीं गया। सिर्फ बबूला इतना बड़ा हो गया कि अब साबुन की फिल्म उसे न सम्हाल सकी। साबुन की फिल्म टूट गयी और बबूला विराट सागर से मिल गया।

ऐसे ही ध्यान में रोज विरलता आती जाती है। फिर एक दिन जिसे हम मैं कहते हैं वह साबुन के बबूले की फिल्म की तरह टूट जाता है। हम मर नहीं जाते। लेकिन जिसे हम मैं कहते थे वह मर जाता है। वह भी क्या मर जाता है, सिर्फ हमारा भ्रम मर जाता है। और वह जो हमारे भीतर विराट हमारे बबूले के भीतर बन्द था, विराट के साथ एक हो जाता है। उस दिन नृत्य है, उस दिन संगीत है, उस दिन कला है, उस दिन सृजन है। उस दिन व्यक्ति के जीवन से दुख का अंत हो गया और आनन्द की वीणा बजने लगती है। उस आनन्द की वीणा से उठे स्वरों का नाम कला है। उस आनन्द के स्वरों से जन्मे हुए चित्रों का नाम कला है। उस आनन्द के स्वरों से बजे हुए घूंघर का नाम कला है। उस आनन्द से जो भी हो, चाहे नृत्य, चाहे संगीत, चाहे गीत, चाहे काव्य और चाहे साहित्य और चाहे कुछ भी हो, कोई चुप भी रह जाय– तो उसका मौन, कला है।

ये तीन बातें मैंने कही – विज्ञान प्रथम चरण है। वह तर्क का पहला कदम है। तर्क जब हार जाता है तो धर्म दूसरा चरण वह अनुभूति है। और जब अनुभूति सघन हो जाती है तो बरसा शुरू हो जाती है, वह कला है। और इस कला की उपलब्धि सिर्फ उन्हें ही होती है जो ध्यान को उपलब्ध होते हैं। वह ध्यान की बाई–प्रोडक्ट है। जो ध्यान के पहले, कलाकार है वह किसी न किसी अर्थों में वासना केन्द्रित होता है। जो ध्यान के बाद कलाकार है उसका जीवन, उसका कृत्य, उसका सृजन सभी परमात्मा को समर्पित और परमात्ममय हो जाता है। इसलिए कला को मत खोजना, खोजना ध्यान को और कला को छाया की तरह पीछे से आने देना। कला को मत खोजना, खोजना मौन को। कला को पीछे आने देना। कला सदा शैडो की तरह आती है, पीछे से आती है।

जो कला को सीधा खोजता है वह शेडोलैंड में खो जाता है, वह सिर्फ छाया-लोक में खो जाता है। इसलिए जिसको हम कलाकार कहते हैं–चित्रकार, मूर्तिकार,

कवि वह सब छायालोक में खोये रहते हैं। सत्य की दुनिया से उनका कोई सम्बन्ध नहीं हो पाता। वे सिर्फ सपनों में ही खोये रहते हैं और अपने सपने को ही सजाते और संवारते रहते हैं। कला का सपनों से कोई सम्बन्ध नहीं। जितना सम्बन्ध विज्ञान का सत्य से है, जितना सम्बन्ध धर्म का सत्य से है उतना ही संबंध कला का भी सत्य से है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। यह जरूरी नहीं है कि मेरी सब बातें ठीक हों, यह भी जरूरी नहीं है कि कोई एकाध बात ठीक हो, यह भी जरूरी नहीं है कि आप मेरी बातें मानें। इतना ही काफी है कि जो मैंने कहा उसे आप थोड़ा सा सोचना, हो सके तो थोड़ा सा अनुभव करना, हो सके तो अनुभूति को थोड़ा सा फैलने देना और बंटने देना।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना इसलिए बहुत अनुग्रहीत हूं। और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।

*

(भारतीय विद्या भवन, बम्बई में दिनांक ११ अक्टूबर १९७० को भगवान श्री रजनीश द्वारा दिया गया एक प्रवचन।)

मुल्ला नसरुद्दीन के झूठे [!] लतीफे

–प्रस्तुतकर्ता : साधु हरिदास
(रामसेन. राज.)

(व्यक्ति जब मिट कर परम अस्तित्व से एक हो जाता है तब उससे परम सगीत, आलोक व आनंद के झरने बहते हैं और उसके साथ ही करूणा का सागर भी उभर जाता है। करुणा के इस अथाह सागर से भगवान श्री रजनीश मानव कल्याण हेतु कुछ झलक लेकर हमारे हृदय-द्वार तक आते हैं ताकि जन्मों से अवरुद्ध झरने फिर से बहने शुरू हों एवं हम पर संगीत, आलोक व आनंद की बौछार हो । तो वे, यह झलक मुल्ला नसरुद्दीन के द्वारा देना चाहते हैं। पहले तो मुल्ला खूब हंसाता हुआ मालूम पड़ेगा –ठीक विदूषक की तरह । पर धीरे–धीरे हमें ख्याल में आयेगा की एक "जागे" हुए आदमी की "सोये" हुए लोगों के लिए यह पीड़ा है, करुणा है—उसमें सोये हुए लोगों को जगाने की परोक्ष चेष्टा की गई है। हमारा मन "जागने" से कैसे बचता है और धोखा देता है वह इसमें हमें दिखाई पड़ेगा । चलें, मुल्ला के दर्पण में स्वयं का साक्षात्कर करें।)

(१) एक बार मुल्ला नसरुद्दीन से उसके मित्र ने मजाक में कहा: "नसरुद्दीन, तुम्हारी पत्नी रात में अपने प्रेमी के साथ, तुम्हारे ही आम के बगीचे में प्रेमालाप करती है।"

मुल्ला गंभीर हो गया। फिर बोला : "सच, कब करती है?"

मित्र ने कहा : "यही करीब रात के एक बजे।"

उस दिन नसरुद्दीन का समय बड़ी बेचैनी में कटा। रात का खाना भी न खाया, और रात के दस बजते-बजते वह अपनी बंदूक लेकर बगीचे में जाकर एक पेड़ की आड़ में जाकर बैठ गया। सोच रखा था उसने कि आज दोनों को एक साथ ही खत्म कर दूंगा।

समय बीतता गया, पर न ही उसकी पत्नी आई और न ही उसका प्रेमी आया।

पर रात के सन्नाटे में एक का घंटा बजा तब उसे ख्याल आया कि **वह तो अभी तक अकेला --कुंवारा ही है।**

पर मुल्ला नसरुद्दीन पर हंसना नहीं। क्योंकि लोगों की हालत आज ऐसी ही है।

००

(२) प्रेमिका: "मुल्ला, तुम कहते हो कि तुम मेरे लिए मौत का सामना कर सकते हो। अच्छा जरा इस सांड के सामने ही खड़े हो जाओ!"

मुल्ला नसरुद्दीन ने सांड को गौर से देखा और फिर कहा: "मैं मौत का सामना निश्चित ही कर सकता हूं। लेकिन यह सांड अभी मरा कहां है?"

००

(३) "मेरे मुअक्किल, मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी भूख शांत करने के लिए केवल पाँच रुपये चुराये," वकील ने मुल्ला का बचाव करते हुए कहा, "इसका मेरे पास सबूत है। पास ही ५०० रुपयों से भरी हुई थैली पड़ी थी जिसे उसने छुआ भी नहीं।"

इस दलील का अदालत पर गहरा प्रभाव पड़ा।

लेकिन हिचकियों की आवाज सुनकर वकील मुड़ा। मुल्ला जोर-जोर से रो रहा था।

अदालत मुल्ला के पश्चात्ताप से और भी प्रभावित हुई।

वकील ने पूछा: "क्यों, नसरुद्दीन, तुम्हें बहुत पछतावा हो रहा है न!

"जी हां!" नसरुद्दीन ने कहा, **"मुझे बड़ा पछतावा है कि वह थैली मेरी निगाह से कैसे चूक गई?"**

(४) अचेतन मन बड़े खेल खेलता है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपनी मंगेतर के साथ गांव लौट रहा था।

उसकी एक बांह में बाल्टी, एक हाथ में छड़ी और दूसरी बांह के नीचे एक मुर्गी और दूसरे हाथ में एक बाल्टी की रस्सी थी।

"नसरुद्दीन, मुझे तुम्हारे साथ चलने में बड़ा डर लगा रहा है," मंगेतर बोली, "कहीं तुम छेड़छाड़ न करने लगो!"

"इन सब चीजों से लदा-फदा होने पर वह कैसे संभव है?" नसरुद्दीन ने कहा?

"**क्यों? संभव क्यों नहीं है?**" मंगेतर ने चांद की ओर देखकर कहा, "**तुम छड़ी को जमीन में गाड़कर, बकरी को उसमें बांधकर मुर्गी को बाल्टी के नीचे जो रख सकते हो!**"

●●

(५) मुल्ला नसरुद्दीन बेकार था। कोई भी उपाय न देख उसने नौकरी के लिए एक सर्कस का द्वार खटखटाया। सर्कस के मालिक ने कहा: "नसरुद्दीन, तुम्हें बस इतना ही करना है कि शेर के पिंजरे में घुसकर उसे गोश्त का टुकड़ा दो और चले आओ। रहस्य इतना ही है कि तुम शेर को यह विश्वास दिला दो कि तुम उससे डरते नहीं हो।"

"मुझे यह नौकरी नहीं करनी," मुल्ला बोला, "**मैं इतना धोखेबाज नहीं हो सकता हूं।**"

●●

(६) "मुझे बहुत डर लग रहा है, मुल्ला!" मरीज ने कहा, "यह मेरी पहली ही बीमारी है।"

"व्यर्थ ही डर रहे हैं महाशय!" मुल्ला नसरुद्दीन बोला, "**मुझे देखिये, मैं तो कहीं नहीं डर रहा, मेरे भी तो आप पहले ही मरीज हैं।**"

●●

(७) "मुल्ला, मैं सारे वक्त परेशान रहता हूं," मरीज ने अपना हाल सुनाते हुए मुल्ला नसरुद्दीन से कहा, "मुझे कई बार दौरा पड़ता है और मैं खुद को मार डालने की कोशिश करने लगता हूं!"

इतनी भी बात के लिए आपको चिंतित होने की जरूरत नहीं है,

नसरुद्दीन ने गंभीरता से कहा, **"आपके पूर्ण सफल होने की जिम्मेदारी मैं अपने सिर लेता हूं।"**

(८) मुल्ला नसरुद्दीन लंगड़ाकर चल रहा था और पैरों की पीड़ा से उसकी आंखों में आंसू छलक आये थे।

उसकी पत्नी ने कहा, "मुल्ला, तुम रो क्यों रहे हो?"

मुल्ला बोला: "मेरे जूते पैरों को बहुत तकलीफ पहुँचा रहे हैं।"

पत्नी ने मुल्ला के पैरों की ओर देखा तो कहा: "अरे, तुमने तो गलत पैरों में जूते पहन रखे हैं।"

नसरुद्दीन ने नाराज होकर कहा: **"लेकिन मेरे पास कोई और पैर हैं ही कहां ?"**

●●

(९) शरीर बदलता है उम्र से।
मन नहीं।
शक्ति होती है क्षीण।
पर वासना नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन की दाढ़ी में सफेद बाल सिर उठाने लगे थे।

एक रात्रि वेश्यागृह की ओर जाते मुल्ला से किसी पुराने प्रतिद्वन्द्वी ने कहा: "मुल्ला, अब तो तुम्हारे बाल भी सफेद हो चले!"

"घबराते क्यो हो! नसरुद्दीन बोला: **"दिल तो वैसा ही काला है।"**

●●

(१०) जिंदगी में शुभ-अशुभ अंधेरे और प्रकाश की तरह कटे-बटे नहीं है।

कम अशुभ और ज्यादा अशुभ या कम शुभ और ज्यादा शभ के बीच ही सदा चुनाव है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उसके घावों की मरहम पट्टी करती हुई पूछ रही थी: "तुम्हारे कहने का क्या अर्थ है कि तुमने उस आदमी को तुम्हारी ही छड़ी से तुम्हें पीटने दिया?"

"और क्या करता?" कराहता हुआ नसरुद्दीन बोला **"क्योंकि खुद उसकी छड़ी और भी मोटी थी।"**

(११) तथ्य कहाँ है ?
बस सब कुछ व्याख्यायें ही हैं।
और सबकी अपनी-अपनी व्याख्यायें हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन घबराया हुआ पुलिस-थाने पहुँचा और कहने लगा :
"साहब, मेरे मित्र के साथ भयंकर दुर्घटना हो गई है।"
"कैसी दुर्घटना ?' पुलिस अधिकारी ने सजग होते हुए पूछा।
मुल्ला बोला: **"वह आज मेरी पत्नी को भगाकर ले गया है ।"**

विकास !

अब तू ही बता
दें क्या तुझे हम ?
वही पागल हैं हम
दिया जिन्होंने --
सुकरात को जहर, ईसा को सूली
हमने फिर भी,
किया है "विकास"--
निश्चित ही पागलपन में.
तेरे लिए,
सबसे बड़ी सजा

उपेक्षा

-स्वामी कृष्ण कबीर

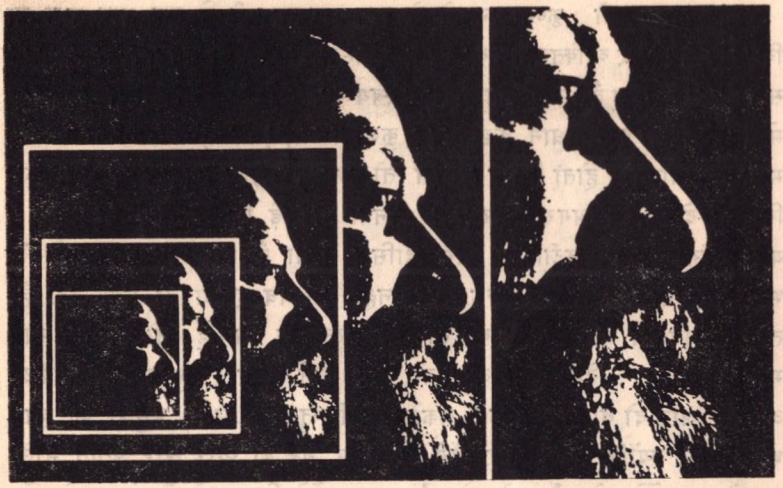

भगवान श्री रजनीश :

व्यक्तित्व नहीं अस्तित्व

—साधु आनंद ब्रह्मदत्त

जैसे कोई दिन भर का थका—मांदा, भूला—भटका, सांझ अपने घर पहुंच जाये, भगवान श्री रजनीश के सन्मुख पहुंचने पर सदैव यही प्रतीति होती है। उन्हें देखते ही जमाने भर की बोरियत, बोझलपन, क्लान्ति क्षण भर में मिट जाती है । प्रातःकाल में गंगा—स्नान से जो ताजगी, स्फूर्ति प्राप्त होती है, वह उनके दर्शन से सहज उपलब्ध हो जाती है। आकाश में जैसे बादल छंट जायें और सूर्य खिलखिलाकर प्रगट हो जाये, दुख, चिंता, भय और मृत्यु के बीच खड़े आदमी को उनका नैकट्य ऐसा ही अनुभव प्रदान करता है। रजनीश आदमी नहीं, एहसास हैं । एहसास को पकड़ पाना, कह सकना या लिख सकना, कठिन ही नहीं असंभव है । एहसास को सिर्फ एहसास किया जा सकता है, जैसे रंगों को सिर्फ देखा जा सकता है, सुगन्धियों को सिर्फ सूंघा जा सकता है। पृथ्वी पर ऐसा व्यक्तित्व कभी पैदा नहीं हुआ । वे समझ के बाहर हैं। वे पकड़ के परे हैं । वे हैं भी, कह नहीं सकता । पर होंगे जरूर

वरना अग्नि में ताप न होती, जल में शीतलता न होती, तारों में चमक और फूलों में सुगन्धि न होती। कागज न होता, कलम न होती। मेरे लिखने का सवाल ही क्या, आप ही न होते !

भगवान श्री कृष्ण पर बोलते हुए, भगवान श्री ने एक बार कहा था कि कृष्ण अपने पूरे व्यक्तित्व में, व्यक्ति नहीं, संस्था हो जाते हैं। भगवान श्री का कहना सच है, कृष्ण संस्था हैं। मैं पूछता हूँ कि वे स्वयं क्या हैं ? व्यक्ति ? संस्था ? संस्था में तो फिर भी कुछ विधान, कुछ नियम, कुछ योजना, पृथक-पृथक विभागों के साथ मध्य एक तारतम्य होता है। मगर मुझे तो न कृष्ण में, न रजनीश में ऐसा कुछ दिखायी देता है। अगर जबरदस्ती मानना ही पड़े कि संस्था हैं तो फिर मैं यही कहूंगा कि प्रिहिस्टोरिक, प्रागैतिहासिक संस्था हैं। जिसके इतिहास और भूगोल, किसी का भी कुछ पक्का पता नहीं हैं। जब इनका ही पता नहीं है, तो फिर विज्ञान और गणित की तो बात करना ही व्यर्थ है। जी हां, मेरी बात मान लीजिए।.. देखिए, दो और दो चार होते है न ? चुहलबाजी के लिए आप दो और दो बाईस भी कह सकते हैं। किन्तु इन दोनों प्रभुओं का कोई भरोसा नहीं क्योंकि ये न चार कहेंगे, न बाईस, बड़े ही प्यार और अत्यंत भोलेपन से कह देंगे, दो और दो-पांच ! आप कहेंगे कि कहते हैं तो कहने दें। इससे गणित नहीं बदल जायेगा ! पर बन्धुओं। सारी मुसीबत तो यही है कि वे कहेंगे दो और दो पाँच और इतना कहकर समाधिस्थ नहीं हो जायेंगे, पूरे जोर-शोर के साथ सिद्ध करेंगे कि ये रहे दो और दो पाँच ! फिर आप अपनी खोपड़ी पीटें या मेरी -कुछ नहीं होगा ! जिद्द करोगे तो दो और दो-छह, सात, या फिर तीन भी हो जायेगा, लेकिन भगवान कसम ! जिन्दगी भर फिर दो और दो चार नहीं होगा।....नहीं, संस्था-वंस्था कुछ नहीं, कृष्ण हों या रजनीश वे व्यक्तित्व नहीं अस्तित्व हैं। मात्र अस्तित्व, कोरा अस्तित्व।

जैसा धुंआ आकाश में विलीन हो जाता है, अस्तित्व को पकड़ने की सारी चेष्टा वैसी ही है। पर धुंआ उठता है, आकाश को पाये या न पाये। खो जाता है, घुल जाता है, पर उठता है। आकाश की तरह जिसका ओर-छोर नहीं है, ऐसे विष्णु को, ऐसे महाकाय रजनीश को लेखनी के माध्यम से छू सकने का हर प्रयास, धुंए के उठने की भांति है। धुंआ इठलायेगा, इतरायेगा, लेकिन खो जायेगा। धुंए का ऊपर उठना, आकाश को पकड़ने का प्रयास नहीं है, सिर्फ इशारा है। इशारा है कि ऊपर अपरिमित आकाश फैला हुआ है,

अनंत आकाश, सिर्फ आकाश ही आकाश।...

जैसे आकाश अपने में सब कुछ समा लेता है, बल्कि यह कहना उपयुक्त होगा कि जैसे सब कुछ आकाश के भीतर ही घटित होता है, या फिर यों कहें कि आकाश का कोई विरोध नहीं, कोई संघर्ष नहीं, सब कुछ उसे स्वीकार है, रज-रज में समाये रजनीश भी सब कुछ स्वीकार करते हैं– समग्र को, दि टोटल को। उन्हें आश्चर्यचकित देख पाना असंभव है। सदाबहार मुस्कराहटों वाले होठों से आप यह भले सुन लें कि–हाँ, यह तो है ही ! या ऐसा होगा ही ! किन्तु यह आप कभी न सुन पायेंगे कि –– अरे, ऐसा कैसे हो गया ?.... वहाँ कोई आश्चर्य नहीं है, कोई दुख, कोई पीड़ा, कोई निराशा नहीं है। वहाँ सुख और कल्पना भी नहीं है। वहाँ वही है, जो सिर्फ है।

है के उस प्रखर और जाज्वल्यमान व्यक्तित्व में नेत्र अटकते हैं और चांद और सूर्य की मिली–जुली रोशनी को ऊंड़ेलते 'है' के नेत्र मस्तिष्क को अनंत की यात्रा पर उड़ा ले जाते हैं। उनके चरणों तले बैठ कर प्रायः यह अनुभव होता है कि कोई अदृश्य अबोली आज कह रही है– हवा मैं हूं, आकाश मैं हूं, जल–थल, सब मैं हूँ। कभी नदी हहराती सुनायी पड़ेगी, कभी हवा सनसनाती जान पड़ेगी। कभी हिमालय के ऊंचे शिखरों पर टहलने का आभास होगा तो कभी महासागर की अतल गहराइयों में विश्राम का अनुभव। मैं नहीं जानता विराट–दर्शन क्या है, किन्तु विराट दर्शन यह नहीं है तो फिर क्या है ?

मुझे उन दिनों की एक बात याद आ रही है, जब भगवान श्री सी. सी. आई. चेम्बर्स में रह रहे थे। उन दिनों कुंडलिनी-योग पर रात्रि को चर्चा होती थी। प्रवचन की समाप्ति के बाद जब वे उठकर अपने कमरे की ओर जाते तो मैं उन्हें कॉरिडोर से गुजरते उस वक्त तक देखा करता था, जब तक कि वे कमरे के भीतर न चले जाते। मुझे बड़ी हैरान होती थी, क्यों-कि उस कॉरिडोर में मुझे वे कभी बहुत ही लम्बे दिखायी पड़ते और कभी एकदम बौने–से। कई बार सिर भटकाता, किन्तु कभी तय न कर पाया कि आखिर उनका क्षेत्रफल क्या है ! भाई से, मित्रों से, इस बात की चर्चा की और मजे की बात है कि कोई भी ठीक-ठीक बता न सका। सभी की रायें अलग-अलग रहीं। वड्लैंड में तो एक बार मैं बहुत ही चक्कर में पड़ गया। (चक्कर में अभी भी हूँ।) बात शायद उस समय की है जब महीपाल

जी ने ज्योतिष-विज्ञान पर प्रश्न किया था । चर्चा समाप्त कर भगवान श्री जब कॉरिडोर से भीतर जाने लगे (वुडलैंड में भी सी. सी. आई. चम्बर्स जैसा कॉरिडोर है । तो उस समय तो मैंने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, किन्तु मकान से नीचे उतरने पर मुझे ऐसा लगने लगा कि आज कॉरिडोर से गुजरते वक्त भगवान श्री सिर पर श्वेत कपड़ा बांधे हुए थे । यह बात दिमाग में ऐसे घर कर गयी कि उस रात भर मैं इसी बात को तय करने में लगा रहा कि मैंने वस्तुतः देखा था या कल्पना कर ली थी । दूसरे दिन कइयों से मैंने पूछा और लोग बड़े प्यार और सहानुभूति से मुझे देखते रहे। किसी ने जवाब नहीं दिया ।—बेचारे का दिमाग खिसक रहा है। भाई लोगों ने सोचा होगा..

उनके सोचने में कोई अत्युक्ति न होगी, मैं भी मानता हूं । अस्तित्व को देख सकने की हमारी क्या सामर्थ्य ? क्या ताब ? अस्तित्व को व्यक्तित्व का जामा पहनाकर शायद कोई झलक मिल जाए, मस्तिष्क ने ऐसा ही कोई प्रयास किया होगा । . .अभागे मस्तिष्क के साथ मुझे भी तो पूरी सहानुभूति है ! सहानुभूति उस समय और भी प्रगाढ़ हो जाती है, जब ख्याल में आता है कि हम उस परम गुरू के शिष्य हैं जो न जाने कितनी बार कह चुके होंगे कि **जहाँ से असीम शुरू होता है, वहाँ जब हम बुद्धि लेकर जाते हैं तो असीम तिरोहित हो जाता है क्योंकि बुद्धि सीमित को ही पकड़ पाती है । जहाँ बुद्धि पहचान सके कि यहाँ शरू होती है बात और यहाँ खत्म; रेखा खींच सके, एक परिधि बना के, खंड अलग निर्मित कर सके, तो फिर बुद्धि पहचान पाती है । बुद्धि विराट को नहीं पकड़ पाती । बुद्धि नाप नहीं पाती और कठिनाई हो जाती है ।**....और इतना सब सुनते रहने के बावजूद हम ऐसे नासमझ हैं कि कठिनाई में फंसते ही रहते हैं । लेकिन कुछ कठिनाइयां होती भी कितनी आनंददायक हैं ! मालिक कुछ भी कहते रहें, कितना भी सावधान करे किन्तु मित्रों, मेरी आप लोगों को मुफ्त सलाह है कि कठिनाइयों में फंसते रहो ।

अस्तित्व व्यक्तित्व नहीं है किन्तु व्यक्तित्व फैलकर अस्तित्व हो सकता है, हो जाता है, फिलहाल कम से कम एक जगह हो ही गया है । आकाश की तरह वे सब समय, सब स्थानों पर उपस्थित हैं । सभी नेत्र उनके हैं, सभी कान उनके हैं । उनसे कुछ छिपा नहीं है, उनसे कुछ अलग नहीं है । सहस्त्रों लोगों का अनुभव हैं कि असंख्य अनेक प्रश्नों के उत्तर वहाँ से सहज ही प्राप्त होते रहते हैं । किसी भी सभा की समाप्ति पर आप जनता में घूम जाइये, आप सुनेंगे—आज मैं यही प्रश्न सोचकर आया था या आज तो वे मुझे ही सुना रहे थे । . . .मै नहीं जानता

कि कृष्ण सोलह हजार रानियों के साथ एक कैसे रमण करत थे किन्तु मैं यह जरूर देख रहा हूं कि सोलह गुणे अनंत लोगों में ये कैसे एक साथ प्रवेश कर जाते हैं।

कोई मुझसे कह रह रहा था कि वहां अब कुछ नहीं बचा है। अग्नि अग्नि में, जल जल में, वायु वायु में, पृथ्वी पृथ्वी में और आकाश आकाश में जा मिला है। पंच-महाभूत पंचमहाभूत में समाविष्ट हो गये हैं। सुन कर जाने क्यों अच्छा नहीं लगा। शायद इसलिए कि अंत्येष्टि–चर्चा जैसी बात है। शायद इसलिए भी कि गणित में, पांच की क्षुद्र संख्या में बांधने का प्रयास दृष्टिगोचर होता है। पंच-महाभूत की बात करके उन्हें उसके भीतर रखकर, परिधि खींचने का उपक्रम सा लगता है। किन्तु नहीं, ऐसा है नहीं। हम परिधि के भीतर हैं। हमारी भाषा परिधि के बाहर नहीं है। लेकिन वे परिधि के पार हैं। वे क्या हैं, कहना संभव नहीं है। वे क्या नहीं हैं, इस पर भले कुछ कहा जा सके। इस पर भी किन्तु कोई कितना क्या कह सकता है? नेति-नेति शायद इन्हीं के लिए कहा गया है। इसलिए भगवान कहकर हमने भी अपनी बुद्धि को खतरों में पड़ने से बचा लिया है। पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हमारे कहने से भगवान हो गये हैं। नहीं, हमारे कहने की कोई जरूरत नहीं है। वे हैं ही।

जैसे लाओत्से कहता है, उसका कोई चेहरा नहीं क्योंकि सभी चेहरे उसके हैं, उसी तरह भगवान का कोई लक्षण नहीं है क्योंकि सभी लक्षण उसी के हैं। इस धारणा के बावजूद भी यह लक्षित किया गया है कि जब–जब वह किसी काया में अवतरित हुआ है, कुछ अत्यंत सहज, किन्तु अति विशिष्ट लक्षण उसके प्रगट हुए हैं। मुझे अपनी माता जी संबधी एक घटना की याद आ रही है। भगवान श्री रजनीश के चरणों में पहुचने के पहले मैं और मेरे परिवार के बड़े लोग एक गुरू के दरबार में दीक्षित हुए थे। वहाँ प्रणाली के अनुसार गुरू महाराज को ईश्वर माना जाता था। वे भी मानते थे कि वे भगवान हैं। मेरी अपनी कोई राय न थी क्योंकि उन्हीं का सिखाया सूत्र था कि जानो और मानो –।....सन् १९६९ के आरम्भ में गुरू महाराज बम्बई आये हुए थे। मेरी माता जी बहुत ही बीमार रहतीं थीं। आर्थराइटिस के कारण उनका चलना फिरना बंद हो गया था किन्तु उनकी उत्कट इच्छा के कारण उन्हें उठाकर गुरू महाराज के दर्शनों के लिए ले जाया गया। जैसी कि मान्यता है कि भगवान के दर्शन आसानी से नहीं मिलते, बड़ी मुश्किलों से माताजी को गुरू महाराज के दर्शन हुए। माता जी ने बड़ी अनुनय की कि वे निकट आ जायें तो वह उनके चरण स्पर्श कर ले, किन्तु उन्होंने गौरव

पूणे फासले पर रहकर पूछा–क्यों बुढ़िया, क्या चाहती है? माताजी ने रोते हुए कहा– सिर्फ मौत चाहती हूं और कुछ नहीं मांगती – भगवान शायद दो प्रकार के होते हैं, निर्मम और करूणापूर्ण । ये शायद निर्मम थे, बोले,––इतना जल्दी मरना चाहती है ? पहले अपने पापों को भुगत ले, फिर मरना । जैसे किसी फिल्म का खलनायक डायलॉग बोल रहा हो, माता जी अत्यंत व्यथित हो लौटीं ।

और फिर आया सन् १९७० । मैं और डाक्टर कावरा भगवान श्री के चरणों में पहुंचे हैं । बातों ही बातों में मैं माताजी की दशा बताता हूँ । उपाय पूछता हूं और फिर जैसे आसमान में करोड़ों चन्द्रमा एक साथ प्रकट हो जाते हैं । पतित पावन मुस्कराते हैं । अरबों-खरबों फूल एक साथ खिल उठते हैं । करूणा की गंगा हहराकर बहती है––अब वे और कितना भोगेंगी ब्रह्मदत्त, बिदा करो उन्हें ! मैं सुनता हूँ और लगता है कि जैसे कड़कड़ाकर बंधन टूट गये ।.. काश, उस दिन मैं मर जाता !

माताजी मुक्त हो गयीं ।

मैं अभी जिन्दा हूं । पापियों की पूरी जमात जिंदा है । और लोग मुझसे पूछते हैं कि तुम रजनीश को भगवान क्यों कहते हो ;? मैं चुप रह जाता हूं, क्या जवाब दूं ? जवाब हो भी क्या सकता है? जवाब के स्थान पर कई बार स्वयं भी पूछ लेता हूं––फिर और क्या कहूं ?

भगवान शब्द तो बड़ा छोटा-सा है । भगवान कहते ही कुछ निश्चित आकार, निश्चित आयाम, निश्चित आचरण कल्पना में उभर आते हैं, किन्तु यहाँ तो उन सबों की भी ठीक-ठीक घोषणा नहीं की जा सकती । उनका जीवन सेतुबद्ध नहीं है । वह प्रतिपल पैदा होता है और मर जाता है और फिर भी कुछ है जो सदा ठहरा हुआ है, जो कभी नही बदलता, जो है ही है । उन्हीं के शब्दों में, **सूरज ऊगते रहते हैं और डूबते रहते हैं, फूल खिलते हैं और बिखरते रहते हैं, जीवन पैदा होता है और लीन हो जाता है । सष्टियां बनती हैं और विसर्जित हो जाती हैं, विश्व निर्मित होता है और प्रलय को उपलब्ध हो जाता है––वह सदा है ! हम उसे कुछ भी नाम दें । कुछ है जो पैदा नहीं होता, मरता नहीं, सदा है, वह है शुद्ध अस्तित्व ।**

और अस्तित्व है अपरिभाष्य ।

हमने कभी अस्तित्व को नहीं देखा । हमने दरख़्त देखा, जिसका अस्तित्व है । हमने नदी देखी, जिसका अस्तित्व है । हमने सूरज देखा, जिसका अस्तित्व

है। हमने आदमी देखा, जिसका अस्तित्व है। लेकिन अस्तित्व नहीं देखा। वस्तुएं देखीं, जो हैं। लेकिन वह जो है—पन है, (इज़नेस) उसे नहीं देखा।

यह सब वे हमें समझा रहे हैं। और हम इतने मूढ़ है कि मूड़ हिला हिलाकर बता रहें हैं कि समझ गए। किन्तु वास्तविकता यह है कि नहीं समझे। नहीं समझे उस रहस्य को जो उनमें प्रगटा है और जो परिभाषा के परे है और जो समझ के भी परे है।

१२।३४६ बेलासिस ब्रिज
तारदेव, बम्बई-३४

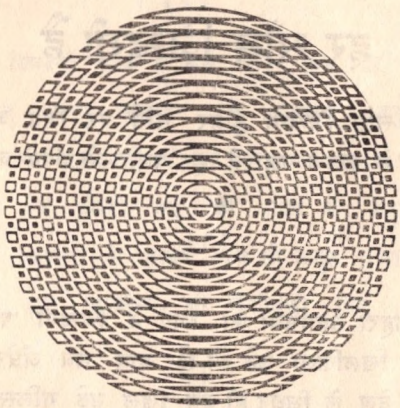

धर्म का पहला संबंध जीवन-रहस्य के अनुभव से हैं। समग्र जीवन ही रहस्यपूर्ण है —एक छोटे-से पत्थर से लेकर आकाश के सूरज तक, एक छोटे-से बीज से लेकर आकाश को छूते वृक्षों तक सभी कुछ, जो भी है, अत्यंत रहस्यपूर्ण है, लेकिन वह रहस्य हमें दिखायी नहीं पड़ता। क्योंकि रहस्य को देखने के लिए जैसी पात्रता चाहिए, वह शायद हमने अर्जित नहीं की है। जैसी 'रिसेप्टिविटी' चाहिए, जैसी ग्राहकता चाहिए, हृदय के द्वार जैसे चाहिए वैसे खुले नहीं, बंद हैं। शायद हम किसी कारागृह के भीतर बैठे हैं, उसकी खिड़कियों और द्वारों को बन्द करके और तब अगर हमारा जीवन अन्धकारपूर्ण और उदासी से भर गया हो, गन्दी हवाओं ने और दुर्गन्ध ने हमें घेर लिया हो, चिन्ताओं ने और तनावों ने हमारे घर में निवास बना लिया हो तो आश्चर्य क्या ?

—भगवान श्री

हर साँस जिन्दगी है

हर साँस जिन्दगी है हर साँस पर जिये जा
रस से छलक रहा है हर पल, उसे पिये जा

(१)

काहरा उदासियों का छाये न जिन्दगी पर
तू खिलखिला उठे तो छँट जाय सब अँधेरा
तू देख ले जिधर ही बस खिल उठे गुलिस्तां
तू झूम गा उठे तो हो जाय सुख–सबेरा
यह जिन्दगी यहाँ है यह जिन्दगी अभी है
हर प्रश्न जिन्दगी का हँस-हँस के हल किये जा

(२)

तू स्नेह-स्निग्ध बनकर जो जल उठे दिये–सा
सब ओर से तुम्हारी होने लगे पुकारें
तू कहकहे लगाकर वीरानियाँ मिटादे––
तू जिस तरफ बढ़ेगा आ जायगी बहारें
हर एक मुस्कराहट हो चाँदनी बसन्ती
तू घोल-घोल मिश्री हर बोल में दिये जा

(३)

हर एक पढ़ सके वह पुस्तक खुली हुई बन
हर पृष्ठ पर कि जिसके बस जिन्दगी लिखी हो
जो बाँचने लगे तो रह जाय बाँचता ही
वह मूर्ति देखले जो अबतक नहीं दिखी हो
जितना मिले जहाँ रस जितनी मिले मधुरता
इस हाथ से लिये जा उस हाथ से दिये जा

(४)

यह जिन्दगी कला है बस और कुछ नहीं है
खुशबू भरा समन्दर है, डूबकर नहाले
रस धार बह रही है सब ओर सब कहीं पर
खुद तैर, दूसरों को भी साथ में बहाले
इस जिन्दगी के हाथों विष भी अमृत हुआ है
हर एक मूर्च्छना को संजीवनी दिये जा

(५)

तू फूल-सा सुकोमल, तू नीर-सा तरल है,
यह क्यों पहाड़ का-सा तू बोझ ढो रहा है
आकाश जगत भर का सर पर उठा रहा क्यों
तू जाग जा स्वयं में किस नींद सो रहा है
यदि मौत भी खड़ी हो हँसकर गले लगा ले
तू हर नशा यहाँ का हँसते हुए किये जा

साधु योग प्रीतम
प्राध्यापक, हिन्दी–विभाग राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा, (राजस्थान)

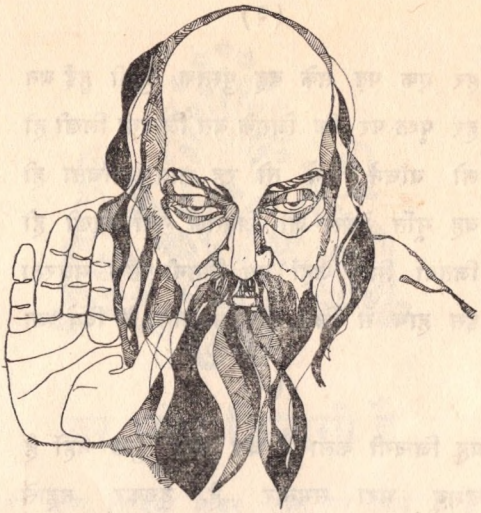

"पत्र-प्रेरणा"

[१] संन्यासी जायेंगे अमृत संदेश बाँटने

प्यारी योग तरु,

प्रेम। निश्चय ही संदेश को उन सब तक पहुँचाना ही होगा जो कि प्यासे हैं और प्रतीक्षा में हैं।

और **बहुत हैं जो कि प्यासे हैं और प्रतीक्षा में हैं।**

ऐसे ही जैसे कि चातक स्वाति-नक्षत्र की बाट जोहता है।

और वे प्यासे लोग पृथ्वी के कोने कोने में हैं।

तुम्हें अमृत की खबर लेकर उन तक जाना होगा।

सब सीमायें तोड़कर –सब सरहदों के पार।

उस महाकार्य के लिए ही तो तुम संन्यासियों – संन्यासिनियों को निर्मित कर रहा हूं।

मनुष्य की चेतना में एक बड़ी उत्क्रांति की घड़ी निकट है और मैं उसकी ही पूर्व तैयारी में लगा हूं।

रजनीश के प्रणाम
१०–३–१९७१

(प्रतिः मा योग तरु. बम्बई)

[२] नव संन्यास आन्दोलन का महत् कार्य

प्यारी योग तरु,

प्रेम । निश्चय ही जो मुझे कहना है वह कहा नहीं जा सकता है ।

और जो कहा जा सकता है वह मुझे कहना नहीं है।

इसलिए ही तो इशारों से कहता हूं--शब्दों के बीच छोड़े अंतरालों से कहता हूं ।

विरोधाभासों (Paradoxes) से कहता हूं या कभी न कहकर भी कहता हूं।

धीरे-धीरे इन संकेतों को समझने वाले भी तैयार होते जा रहे हैं और न समझने वाले दूर हटते जा रहे हैं –इससे काम में बड़ी सुविधा होगी ।

नव-संन्यास आंदोलन से इन संकेतों के बीज पृथ्वी के कोने-कोने तक पहुंचा देने हैं ।

और हजार फेंके गये बीजों में यदि एक भी अंकुरित हो जाये तो यह रिकार्ड-तोड़ सकता है ।

रजनीश के प्रणाम

१२–३–१९७१

(प्रतिः मा योग तरु, बम्बई)

[३] अहंकार की अतिशय उपस्थिति

प्यारी मौनू,

प्रेम । आंखों के सामने है मार्ग--और दिखायी नहीं पड़ता है । कानों के पास है पुकार --और सुनाई नहीं पड़ती है ।

लेकिन क्यों ?

क्योंकि, देखने वाला देखने के लिए अति–आग्रहशील है और इसलिए आंखें खुल नहीं पाती हैं ।

और सुननेवाला स्वयं में इतना केन्द्रित है कि कान बहरे हो जाते हैं ।

एक सद्गुरु से पूछता है कोई : "**मार्ग कहां है ?**"

कहा गया उससे : "ठीक आंखों के सामने !"

लेकिन पूछा उसने पुनः "फिर मुझे दिखाई क्यों नहीं पड़ता ?"

कहा गया : "क्योंकि तुम अतिशय हो-- अत्यधिक हो इसलिए (Because, you are too much)

पर वह माना नहीं और बोला: "आपके संबंध में पूछना चाहता हूं --क्या आपको दिखाई पड़ता है वह ?"

उत्तर आया : "आह ! जब तक देखोगे दो को--"मैं" और "तू" को तब तक आंखों में धुआं है !"

पर नहीं--वह फिर भी नहीं माना और बोला: "क्या जब न "मैं" है, न "तू" है तब वह दिखाई पड़ेगा ?"

प्रत्युत्तर में मौन रहा बड़ी देर और फिर कहा गया : "पागल! जब न "मैं" है, न "तू" तब उसे देखना ही कौन चाहता है ?"

रजनीश के प्रणाम

१४-३-१९७१.

(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

[४] अनेक द्वैतों को समाहित किये हुए—अद्वैत

प्रिय योग लक्ष्मी,

प्रेम । जीवन और मृत्यु--कैसे विपरीत तथ्य फिर भी अस्तित्व में एक ?

अस्तित्व द्वैत को तो जैसे मानता ही नहीं है ।

अस्तित्व है अद्वैत ।

लेकिन फिर भी स्वरहीन नहीं ।

वरन् स्वरों से भरपूर--विपरीत स्वरों से भी ।

अनंत द्वैतों को समाहित किये --किसी पूर्णतर एकत्व में ।

अद्वैत अनेकता का अस्वीकार नहीं है -- अन्यथा होता मृत ।

अद्वैत है अनंत अनेकत्व में ओत-प्रोत एकत्व ।

अद्वैत है संगीत--अगणित स्वरों का ।

स्वरों का अभाव नहीं--वरन् स्वरों का संतुलन ।

और विपरीत दीखने वाले स्वर भी विरोधी नहीं हैं --सहयोगी हैं ।

विरोध है ऊपर--गहराई में अविरोध है ।

और विरोध ने अविरोध को रौनक दी है--रसमय बनाया है ।

पर बुद्धि की सीमा है द्वैत ।

और इसलिए बुद्धि सतह से ज्यादा कभी नहीं जान पाती है।

खलील जिब्रान ने लिखी है एक कथा :

एक सहस्र वर्ष पूर्व मिले दो दर्शनिक लेबनान की एक ढाल पर।

पूछा एक ने दूसरे से : "कहां जा रहे हो तुम ?"

दूसरे ने उतर दिया : "मैं अमृत की खोज में निकला हूं। सुना है मैंने कि इन्ही पर्वतों में कहीं अमृत का झरना है। परन्तु तुम यहां क्या खोजने आये हो ?"

दूसरे दर्शनिक ने कहा : "जरूर ही तुम कोई भूल कर बैठे हो -- क्योंकि शास्त्रों से मैंने जाना है कि इन्हीं पर्वतों में कहीं मृत्यु का राज छिपा है और मैं उसकी ही खोज में निकला हूं।"

फिर विवाद तो स्वभाविक ही था।

जहाँ बुद्धि है वहां विवाद है।

और जहां विवाद है वहां सत्य कहां ?

अंततः प्रत्येक दार्शनिक इसी निष्कर्ष पर पहुंचा कि दूसरा अज्ञानी है और उसे सत्य का कोई भी पता नहीं है।

और तभी उस राह से एक व्यक्ति निकला जिसे कि उसके पहाड़ी गांव के लोग पागल समझते थे।

उसने दर्शनिकों का विवाद सुना और फिर हंसा और बोला "भद्रजनो, यदि तुम मुझ पागल की बात मान सको तो विवाद में समय न गंवाओ और अपनी-अपनी खोज पर निकल पड़ो क्योंकि तुम जो खोज रहे हो उसका नाम जीवन है और वही अमृत है और वही मृत्यु भी।"

रजनीश के प्रणाम

२०-४-१९७१

(प्रतिः मां योग लक्ष्मी, बम्बई)

कुछ स्फुट विचार

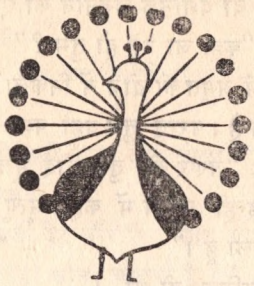

साधना के जीवन में अभय (Fearlessness) पहली शर्त है। जो उसका साहस नहीं कर सकता है, वह अपने भीतर भी नहीं जा सकता है। अंधेरी रातों में, अँधेरे और अनजान और बीहड़ रास्तों पर अकेले जाने में जिस साहस (Courage) की जरूरत है, उससे भी कहीं ज्यादा साहस स्वयं के भीतर जाने के लिए करना होता है, क्योंकि इस प्रवेश से स्वयं के संबंध में ही खड़े किये हुए मधुर स्वप्न टूटते हैं, और ऐसी कुरूपताओं और घिनौने पापों का साक्षात् करना होता है, जिनकी कि हमने स्वयं से बिलकुल निवृत्ति मान ली थी।

—भगवान श्री

अपने सारे वस्त्रों को अलग करके देखो कि आप क्या हो। अपने सारे सिद्धांतों को दूर रखकर देखो कि आप क्या हो।

रेत से मुँह बाहर निकालो और देखो .... वह आँख का खोलना ही... उस भाँति देखना ही, एक परिवर्तन है.... एक नये जीवन की शुरुआत है। आँख खुलते ही एक बदलाहट शुरू हो जाती है, और उसके बाद ही जो हम करते है वह सत्य तक ले जाता है।

अंधकार की परतों को उघाड़कर प्रभु तक चलना है, अज्ञान के विनाश से आत्मा को उपलब्ध करना है। साधना का यही सम्यक् पथ है। और उसके पूर्व स्वप्न नहीं देखने हैं.... सच्चिदानंद ब्रह्म स्वरूप के स्वप्न नहीं देखने हैं.... वे सब शुतुरमुर्ग के रेत में मुंह छिपाने के उपाय हैं— वह पुरुषार्थ का मार्ग नहीं, पुरुषार्थहीनों की मिथ्या तृप्ति है।

—भगवान श्री

स्वर्ण वाक्य

* 'स्व' का लोक संगीत का लोक ही है।
* 'स्व'–ज्ञान जीवन है, स्व–विस्मरण मृत्यु है।
* सत्य के संबंध में जानना बुद्धिगत है, सत्य को जानना चेतनागत है।
* जो अज्ञात है, उसे ज्ञात से जानने का कोई मार्ग नहीं है।
* विचार, स्मृति और धारणा-शून्य मन ही अमूर्च्छा है, जागृति है।
* प्रवृत्ति ही संसार है, उसकी अनुपस्थिति ही मोक्ष है।
* जिस दर्शन से द्रष्टा दीखे, वह सम्यक्‌दर्शन है।
* मनुष्य जिसे जगत् कहता है, वह सत्ता की सीमा नहीं है। वह केवल मनुष्य की इन्द्रियों की सीमा है। इन्द्रियातीत चक्षु से सीमा मिट जाती है और आदि-अंतहीन विस्तार – ब्रह्म उपलब्ध होता है।
* आत्म-दमन नहीं, आत्म-प्रेम ही आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश है।
* प्रत्येक व्यक्ति विकार और बीमारी को छोड़ना चाहता है, पर विकार की जड़ों तक जाना आवश्यक है, वे जिस अचेतन गर्त से आते हैं वहां तक जाना आवश्यक है–– केवल चेतन मन के संकल्प से उनसे मुक्ति नहीं पायी जा सकती है।
* वर्तमान में होना, समयातीत व 'स्व' में होना है, आनंद में होना है।
* मूर्च्छा जगत है; संसार है, अमूर्च्छा ईश्वर है।
* निर्दोष, निष्पक्ष मन से अशांति के प्रति जागने से वह विसर्जित होती है।
* ज्ञान (मन) को छोड़ते ही एक नये लोक का उदय होता है और सब एक शांति के संगीत में स्पंदित होने लगता है। यह अनुभूति ही ईश्वर है।
* खोज और खोजी के मिटते ही खोज पूरी हो जाती है।
* सब परिस्थितियों में अखंडित शांति, सरलता, समता ही साधुता है।
* साक्षी बनते ही चेतना दृश्य को छोड़ द्रष्टा पर स्थिर हो जाती है। इस स्थिति में अकंप प्रज्ञा की ज्योति उपलब्ध होती है और यही ज्योति मुक्ति है।
* आत्मा के दर्पण से विचार की धूल को दूर करना है।
* आत्मा को पाना आसान है, क्योंकि बीच में धूल के एक झीने पर्दे के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।

❋ अचेतन मन से प्रक्षेपित वासनाएँ रुकते ही चेतना को स्व-स्मरण होता है ।

❋ चेतना दर्शक है, साक्षी है— अचेतन मन में संग्रहित वृत्तियाँ और वासनाओं के प्रवाह में अपने को भूल जाती है । यह विस्मरण अज्ञान है । यह अज्ञान मूल है संसार का, भ्रमण का, जन्म-जन्म के चक्र का ।

❋ धर्म 'स्व' से पलायन नहीं वरन् 'स्व' के प्रति जागरण है ।

❋ सुख धर्म नहीं, क्योंकि वह दुःख का अंत नहीं, केवल विस्मृति है ।

❋ धर्म अमूर्च्छा है और अमूर्च्छा आनन्द है ।

❋ भीतर शून्य आता है, तो बाहर सरलता आ जाती है। शून्यता ही साधुता है ।

❋ जीवन में शांति आ जाये तो यह सारा जगत् और जीवन एक अभिनय से ज्यादा कुछ भी नहीं रह जाता है । बाहर कहानी चलती जाती है और भीतर शून्य घिरा रहता है ।

❋ मैं दास हूँ, क्योंकि जो भी बाहर से आता है, उससे उद्विग्न होता हूँ । कोई भी बाहर से मेरे भीतर को बदल सकता है । मैं इस भाँति परतंत्र हूँ । बाहर से मुक्ति हो जाये— बाहर, कुछ भी हो, पर मैं भीतर वही रह सकूँ जो कि हूँ, तो स्व का और स्वतंत्रता का प्रारम्भ होता है ।

❋ आत्म-ज्ञान के बीज बोने से अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, सत्य, ब्रह्मचर्य – ये सब जीवन साधना के फूल खिलते हैं । आत्मज्ञान मूल है, शेष सब उसके परिणाम है ।

❋ जो मुक्त गगन में उड़ने का आल्हाद ले सकता है, वह एक तोते के पिंजरे में बन्द साँसे तोड़ रहा है । चित्त की दीवारें तोड़ देने पर खुला आकाश उपलब्ध हो जाता है । और खुला आकाश ही जीवन है ।

❋ नास्तिक होना अधार्मिक होना नहीं है । वास्तविक आस्तिकता पाने के लिए नकार में से गुजरना ही होता है । संस्कारों से, शिक्षण से, विचारों से मिली आस्तिकता कोई आस्तिकता नहीं है । ईश्वर को धन्यवाद दो कि तुम ईश्वर की धारणा से सहमत नहीं हो, क्योंकि यह असहमति ईश्वर के सत्य तक तुम्हें ले जा सकती है । नास्तिकता धार्मिक जीवन की शुरूआत है । वह अंत नहीं है । वह पृष्ठभूमि है । पर उस पर ही रुक नहीं जाना है । वह रात्रि है, उसमें ही डूब नहीं जाना है । उसके बाद ही, उससे ही, सुबह का जन्म होता है ।

❋ प्रयास स्वयं अशांति है । प्रयास का अर्थ है कि जो है उससे कुछ भिन्न चाहा जा रहा है । यह स्थिति तनाव की है । तनाव से तनाव ही पैदा

होता है। अशांति में किया गया कुछ भी अशांति ही लाता है। अशांति शांति में नहीं बदलती है। शांति चेतना की एक भिन्न स्थिति है। जब अशांति नहीं होती है, तब उसका होना होता है।

❋ ईश्वर को तलाश भ्रम ही है, क्योंकि ईश्वर को खोजने का प्रश्न ही नहीं उठता। वह सदा ही उपस्थित है। पर हमारे पास ठीक हैं उसे देख सकें, ऐसी आँखें नहीं हैं, इसलिए असली खोज सम्यक दृष्टि को पाने की है।

मैं देखता हूँ कि असली प्रश्न मेरा है, और मेरे परिवर्तन का है। मैं जैसा हूँ, मेरी आँखें जैसी हैं, वही मेरे ज्ञान की और दर्शन की सीमा है। मैं बदलूं, मेरी आँखें बदलें, मेरी चेतना बदले, तो जो अभी अदृश्य है, वह दृश्य हो जाता है। और फिर जो अभी हम देख रहे हैं, उसकी ही गहराई में ईश्वर उपलब्ध हो जाता है। संसार में ही प्रभु उपलब्ध हो जाता है।

इसलिए मैं कहता हूँ, धर्म ईश्वर को पाने का नहीं, वरन् नयी दृष्टि, नयी चेतना पाने का विज्ञान है। प्रभु तो है ही, हम उसमें ही खड़े हैं, उसमें ही जी रहे हैं, पर आँखें नहीं हैं, इसलिए सूरज दिखायी नहीं देता है। सूरज को नहीं, आँखों को खोजना।

❋ गौतम बुद्ध ने चार आर्य-सत्य कहे हैं—दुःख, दुःख का कारण, दुःख—निरोध और दुःख निरोध का मार्ग। मैं पाँचवाँ आर्य-सत्य देखता हूँ जो कि सबसे प्रथम भी है। शेष चारों बाद में आते हैं। वह आर्य-सत्य है—दुःख के प्रति मूर्च्छा। दुःख है, पर हम उसके प्रति मूर्च्छित हैं। इस मूर्च्छा से ही वह हमें दीखता नहीं है। इस मूर्च्छा से ही हम उसमें होते हैं, पर वह हमें संतप्त नहीं करता है।

❋ (१) मन को जानना है, जो इतना निकट है, फिर भी इतना अज्ञात है
(२) मन को बदलना है, जो इतना हठी है, पर परिवर्तित होने को इतना आतुर है।
(३) मन को मुक्त करना है, जो पूरा का पूरा बंधन में है; किन्तु अभी और यहीं मुक्त हो सकता है।

ये तीन बातें भी कहने की हैं, करना तो केवल ही एक काम है। वह है **मन को जानना**। शेष दो उस एक के होने पर अपने आप हो जाती हैं। ज्ञान ही बदलाहट है। ज्ञान ही मुक्ति है।

परमात्मा के द्वार पर राजाओं के वेश में नहीं, सिंहासनों पर बैठे हुए नहीं वरन् एक प्रार्थी का भाव लेकर, दीन-हीन, विनम्रता से हाथ फैलाये हुए जाना होता है। क्राइस्ट कहते थे, 'पुअर इन स्प्रिट', जो इतने भाव से-दीन, असहाय, विनम्र, आतुर और याचक होकर उस द्वार पर खड़ा हो जाता है, फिर जो भी उससे बनता है, भूल-चूक भरे शब्दों में प्रार्थना करने लगता है, जैसे भी बनता है, भूल-चूक भरी वीणा बजाने लगता है, तब वे द्वार खुल जाते हैं **उस परम संगीतज्ञ के** और वह अपनी वीणा उठाकर आ जाता है। लेकिन इतनी दूर तक हमें यात्रा करनी पड़ती है। इस यात्रा के लिए हमें तैयार हो जाना जरूरी है।

--भगवान श्री

नवीनतम प्रकाशन नवीनतम प्रकाशन

भगवान् श्री रजनीश की नवीनतम ऐतिहासिक कृतिः

"महावीर-वाणी"

सन् १९७१ के पर्युषण-पर्व पर दिये गये १८ अद्भुत प्रवचनों का संकलन

पृष्ठ संख्या : ६१२, मूल्य : ३० रुपये, (डाक खर्च अलग से)
अपनी प्रति शीघ्र ही मंगवा लें.

*

"महावीर-वाणी" के नमोकार सुत्त, मंगलाचरण सुत्त, लोकोत्तम सुत्त, शरण सुत्त की तथा धम्म सुत्त के प्रथम श्लोक की विषद व्याख्या।

'धर्म क्या है ? अहिंसा, संयम और तप' पर तथा तप के छः बाह्य अंगों : अनशन, उणोदरी, वृत्ति-संक्षेप, रस-परित्याग, काय-क्लेश, संलीनता व तप के छः अन्तः अंगों--प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य (सेवा), स्वाध्याय, ध्यान व कायोत्सर्ग के सम्बन्ध में भगवान् श्री ने तीर्थंकरों की जिन-साधना के परमगूढ़ एवं लुप्तप्राय साधनाओं. एवं योग के रहस्यों को आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त ही विस्तार से उद्घाटित, पुनर्विश्लेषित एवं स्वानुभव से आलोकित किया है।

भगवान् श्री की पिछली पुस्तक : "महावीर : मेरी दृष्टि में "(पृष्ठ ७९०, मूल्य ३० रुपये) की तरह प्रस्तुत पुस्तक "महावीर-वाणी" भी अध्यात्म के जगत में उनकी चिर ऐतिहासिक देन सिद्ध होगी।

प्रेस में शीघ्रता से छप रही अन्य पुस्तकें :

(१) मैं मृत्यु सिखाता हूँ (ध्यान, मृत्यु और समाधि पर १५ प्रवचन और ध्यान-प्रयोगों का संकलन)
(२) निर्वाणोपनिषद् (द्वितीय साधना शिविर, माउन्ट आबू के १५ प्रवचन)
(३) ताओ उपनिषद (चीन के संत लाओत्से के सूत्रों 'ताओ-तेह्-किंग' पर प्रथम २२ प्रवचन) (प्रथम खण्ड)
(४) मुल्ला नसरूद्दीन (२०० झूठे लतीफे)
(5) Seeds of Revolution (Revised edition)
(6) Dynamics of Meditation (12 discourses)
(7) I Am the Gate (8 discourses)
(8) The Inward Revolution (12 discourses)
(9) The Ultimate Alchemy [2 Vols., 36 discourses on "The Atma Pooja (Worship of the Self) Upanishad].
(10) Secrets of Discipleship.

भगवान् श्री रजनीश के आध्यात्मिक अनुभवों, साधना प्रयोगों एवं विचारों के
प्रचार-प्रसार के लिए प्रकाशित

अंग्रेजी द्वैमासिक

संन्यास

('नव संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय' आन्दोलन का मुख पत्र)

योग, ध्यान, साधना, ज्ञान एवं जीवन के गहन व गूढ़ रहस्यों के उद्‌घाटन के लिए पढ़ें :

" संन्यास "

बहुरंगी कलात्मक साज-सज्जा, संग्रहणीय व दुर्लभ पाठ्य सामग्री

वार्षिक शुल्क : रु. १८ -०० एक प्रति : रु. ४-००

चेक या मनीआर्डर भेजने का पता :

श्री जे. डी. लश्करी, 'संन्यास', द्वारा-सेलप्रिन्ट, ए-जेड, इन्डस्ट्रियल एस्टेट, फर्गुसन रोड, लोअर परेल, बम्बई- १५ टेलि. नं. ३९०६९२

भगवान् श्री रजनीश के

आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक विचारों से परिचित होने के लिए पढ़ें

गुजराती साप्ताहिक

ॐ

(ओम्)

वार्षिक शुल्क : रु. १२-००, एक प्रति : रु. ०-२५

प्रकाशक :

स्वामी रोहित सिद्धार्थ, रोहित क्षेम, ठाकुर रतनशी खेराज एस्टेट, म. गांधी रोड मुलन्ड, बम्बई-८०

भगवान् श्री रजनीश की सृजनात्मक जीवन-दृष्टि
का
मासिक पत्र

युक्रांद

मानसेवी सम्पादक:
अरविन्द कुमार

एक प्रति: १ रुपया * वार्षिक शुल्क: १२ रुपये

देश के कोने-कोने में विक्रय एजेन्ट नियुक्त करना है
सम्पर्क करने तथा शुल्क भेजने का पता:
अरविन्द कुमार, सदस्य युक्रांद प्रकाशन समिति,
६९०, राईट टाउन, जबलपुर (म. प्र.)

भगवान् श्री रजनीश
के क्रांतिकारी विचारों का पाक्षिक संकलन

योग-दीप

(मराठी भाषा में)

संपादक :
गोपीनाथ तलवलकर
मां आनंद वंदना (वंदना पुँगलिया)

वार्षिक शुल्क : ५ रुपये

प्रकाशक : जीवन जागृति केन्द्र, १०१ टिंबर मार्केट, पूना--२
फोन : २४१४८

भगवान् श्री के आगामी कार्यक्रम

प्रवचन, गीता-ज्ञान-यज्ञ और साधना-शिविर

(१) **अमृत अध्ययन वर्तुल की आठवी श्रृंखला**
दिनांक : १६ से २२ अगस्त, १९७२, विषय : लाओत्से के सूत्र 'ताओ-तेह्-किंग'
स्थान : पाटकर हॉल, बम्बई.
समय : रात्रि ७–०० से ८-३०, (केवल शनि-रवि का समय प्रातः ८-३० से १०-००)

(२) **पर्युषण व्याख्यान माला, बम्बई**
दिनांक : ४ से २१ सितम्बर, १९७२, विषय : "महावीर-वाणी" (दूसरी श्रृंखला)
स्थान : पाटकर हॉल, समय : प्रातः ८-१५ से ९-४५

(३) **ध्यान साधना शिविर, माउन्ट आबू (राजस्थान)**
दिनांक : १३ से २१ अक्टूबर, १९७२ विषय : "अध्यात्म उपनिषद्'
कार्यक्रमः प्रतिदिन प्रातः और रात्रि हिन्दी और अंग्रेजी में प्रवचन और प्रातः, दोपहर, रात्रि ध्यान के प्रयोग
आयोजक : स्वामी सत्यबोधिसत्व, मंत्री, जीवन जागृति केंद्र द्वारा – डायकेम कॉरपोरेशन, स्कूल के सामने, खाडिया चार रस्ता, अहमदाबाद–१ फोन २४०८३

(४) **गीता–ज्ञान–यज्ञ, बम्बई**
दिनांक : ९ से २२ नवम्बर, १९७२ विषय : गीता, अध्याय ११, विश्वरूप-दर्शन-योग
स्थान : क्रास मैदान, बम्बई समय : संध्या ६-३० से ८-००

(५) **ध्यान साधना शिविर, बम्बई**
दिनांक : ११ से २० दिसम्बर. १९७२
विशेष : भगवान् श्री का ४२ जन्म दिन ११ दिसम्बर
स्थान : आनन्द शिला, नव–संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय, विश्वशीर्ष केंद्र,बम्बई
आयोजकः साधु ईश्वर समर्पण, मंत्री, जीवन जागृति केन्द्र, ३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बन्दर रोड, बम्बई–९ फोन : ३२७६१८, ३२१०८५

(६) **गीता–ज्ञान–यज्ञ, बम्बई**
दिनांक : १७ से २६ जनवरी, १९७३ विषय : गीता अध्याय : १२ भक्तियोग
स्थान : क्रास मैदान, बम्बई समय : संध्या ६-३० से ८-००
सूचना : कार्यक्रम क्रमांक १, २ और ५ के लिए जी. जा. केंद्र, बम्बई तथा कार्यक्रम क्र. ३ के लिए जी. जा. केंद्र, अहमदाबाद से अपनी सीट समय से पहले रिजर्व करवानी जरूरी है ।

लोक-मंगल, लोक-संग्रह व आत्म-जागरण
तथा
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय...
हेतु निकली

नव-संन्यासियों की कीर्तन मण्डलियों का कार्यक्रम

(१) भगवान् श्री रजनीश द्वारा प्रेरित अमृत, आनन्द व आलोक का सुगंध बिखेरती-लुटाती नव-संन्यासियों की एक कीर्तन मण्डली ने पंजाब का विस्तृत प्रवास पूरा कर १४ जुलाई, ७२, को सहारनपुर पहुंचकर अपना तीन महीने का **उत्तर प्रदेश प्रवास** प्रारंभ किया है। इस "**स्वामी वैराग्य अमृत कीर्तन मण्डली** के दस नव-संन्यासियों के नाम है : स्वामी चिन्मय नारायण, स्वामी निर्मल भारती, स्वामी प्रेम (कनाडा से), स्वामी आनंद समीर, स्वामी देवदास, मा. धर्म प्रतिभा, मा योग निवेदिता, मा योग करूणा (डेन्मार्क से), स्वामी वैराग्य अमृत और मा आनंद मधु।

इस कीर्तन–मण्डली के कार्यक्रम का विवरण इस प्रकार है :

स्थान	तारीखें	संयोजक
१. सहारनपुर	१४,१५,१६, १७ जुलाई ७२	श्री मनोहर, पंजाब रेस्टुरां
२. देहरादून	१९,२०,२१, "	श्री जोगिन्दर सिंह साठी, युनिवर्सल टिम्बर्स, सहारनपुर रोड
३. मसूरी	२३, २४, "	———
४. ऋषिकेश	२६,२७,२८, "	———
५. हरिद्वार	२९,३०,३१, जुलाई १ से ५ अगस्त	श्री एस. के. अरोरा, प्रसाद वाले, गायघाट
६. अलीगढ़	६ से १० अगस्त	श्री सुखनन्दजी जैन, द्वारा जैन प्रोडक्ट्स, जैनपुरी, अलीगढ़
७. हाथरस	१२,१३,१४ "	श्री हजारीलाल वाठिया, द्वारा– रतनचंद हजारीलाल एण्ड कं. घंटाघर (गली मुर्जियात) फोन २१२–१२४
८. कानपुर	१६ से २० "	श्री सनत कुमार जैन, ४८।१३९, जनरल गंज
९. लखनऊ	२२ से २६ "	डॉ. देवकीनंदन श्रीवास्तव, 'प्राण कुटी' शिवपुरी, गौतम बुद्ध मार्ग
१०. इलाहाबाद	२८ से ३१ "	श्री रमेशकुमार, 'कमल कुंज' ३–ए, म. गांधी रोड, हाइकोर्ट के पास, फो. ३४६
११. बनारस	२ से ६ सित. ७२	श्री ज्ञानजी भाई, जैन स्टोर्स, कुदई चौक फोन ३३०५

(२) भगवान् श्री का अमृत संदेश, ध्यान प्रक्रिया और प्रभु-चिकित्सा के प्रयोगों का प्रसाद बांटती हुई **"स्वामी नरेंद्र बोधिसत्व कीर्तन-मंडळी" कच्छ-सौराष्ट्र-गुजरात-प्रवास** पर है। उसके तीन माह के कार्यक्रमों की जानकारी निम्नांकित है :

स्थान	तारीखें	संयोजक
१. डीसा	१६,१७, जुलाई,७२	श्री आशाराम डी. माघवाणी, सिंधी कालोनी
२. राघनपुर	१८,१९ "	---
३. कंडला	२१ से २३ "	---
४. गांधीधाम	२४,२५ "	श्री एस. एम. रावल, बी. बी जेड, जी-२६
५. आदीपुर	२६,२७ "	डॉ. के. बी. थडानी, बंगला नं. जेड-१०
६. अंजार	२८ जुलाई	सुश्री रमाबेन शाह, एच-६, जैन कालोनी, न्यू अन्जार (कच्छ)
७. मुन्द्रा	२९, ३० "	श्री हरसुख भाई देवासी महेता, पन्चायत प्रमुख, मुन्द्रा
८. भुज	३१ जुलाई, १,२ अगस्त	श्री जे. के. मंघाणी, डन्डा बाजार
९. मान्डवी	३, ४,५, "	श्री भाईलाल भट्ट, बन्दर रोड
१०. जामनगर	७,८,९ "	श्री मनुभाई महेता, मंगल भवन, रणजीत रोड.
११. सिक्का	१०,११ "	----"----
१२. धारी	१२,१३ "	---
१३. अमरेली	१४,१५,१६ "	---
१४. ढसा	१७,१८ "	---

१५. लींबडी	१९, २०	अगस्त, ७२	— —
१६. बोटाद	२१,२२,२३	"	- - -
१७. भावनगर	२५,२६,२७,'		श्री नानुभाई पण्डया, २९, वन्दना, नवा फिल्टर के पीछे
१८. नडीयाद	२९,३०,३१	"	श्री एच. ब्रह्मभट्ट, वाइस प्रेसिडेन्ट, जूनियर चेम्बर्स, गणपति स्ट्रीट, मोदी संघ
१९. कपड़बंज	१,२,	सितम्बर, ७२	---
२०. डाकोर	३,४	"	---
२१. वडोदरा	६,७,८	"	श्री चन्द्रकान्त भाई पटेल, आसोपालव
२२. गोधरा	९,१०	"	—
२३. दाहोद	११,१२	"	---
२४. छोटा उदेपुर	१३,१४	"	---
२५. डमोई	१५,१६	"	---
२६. भरूच	१८,१९,२०	"	---
२७. अंकलेश्वर	२१,२२,		-- -
२८. सुरत	२३,२४,२५,	"	श्री नानुभाई नायक, साहित्य संगम, बी.डी. पी. डी. योगी, पुरा, सूरत- २
२९. विजापुर	२७	सित. ७२	---
३०. हिम्मतनगर	२८	"	---
३१. ईडर	२९	"	---
३२. खेड ब्रह्मा	३०	"	---
३३. विसनगर	१	अक्टूबर, १९७२	----

जीवन जागृति केन्द्र

३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन,
मस्जिद बंदर रोड,
बम्बई-९ फोन : ३२७६१८
३२१०८५

ज्योति-शिखा ग्राहक नं.

प्रिय मित्र,

आप 'ज्योति–शिखा' के ग्राहक हैं। आपका चंदा ———— को समाप्त हो गया है। कृपया चंदा रु. ८-०० एक वर्ष (मार्च १९७३ तक) का तुरंत भिजवाकर आप अपनी प्रतियां सुरक्षित करवा लें और अन्य मित्रों को भी ग्राहक बनवाकर 'ज्योति-शिखा' के प्रति अपने प्रेम का परिचय दें।

मंत्री

ग्राहकों को आवश्यक सूचना

छपाई, कागज, डाक आदि की दरों में असाधारण वृद्धि हो जाने के कारण 'ज्योति-शिखा' को काफी घाटा वहन करना पड़ रहा है। अतएव जून १९७२ के अंक से,' ज्योति-शिखा' के शुल्क में निम्नलिखित परिवर्तन किया गया है, ग्राहक कृपया नोट कर लें :

एक प्रति : २ रुपये — वार्षिक शुल्क ८ रुपये

भगवान् श्री रजनीशजी की समस्त पुस्तकों का सर्वाधिकार जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई के अन्तर्गत सुरक्षित है। प्रकाशन तथा अनुवाद की सुविधा के लिये बम्बई केन्द्र की लिखित अनुमति नितान्त आवश्यक है।

AVAILABLE ENGLISH BOOKS OF

Bhagwan Shree Rajneesh

(Postage extra)

		Pages	Price In India
I.	**Translated from the Originai Hindi version:**		
1.	Path to Self-Realization	151	5·00
2.	Seeds of Revolution	227	8·00
3.	Philosophy of Non-Violence	34	0·80
4.	Who Am I?	145	3·00
5.	Earthen Lamps	247	4·50
6.	Wings of Love and Random Thoughts	166	3·50
7.	Towards the Unkncwn	54	1·50
8.	From Sex to Superconsciousness	180	6·00
9.	The Mysteries of Life and Death	70	4·00
10.	Lead Kindly Light	36	1·50
*11.	What is Rebellion!		
	II. Original Englisb Books:		
12.	Meditation: A New Dimension	3c	2·00
13.	Beyond and Beyond	32	2·00
14.	Flight of the Alone to the Alone	36	2·50
15.	LSD: A Shortcut to False Samadhi	25	2·00
1o.	Yoga: A Spontaneous Happening	27	2·00
17.	The Vital Balance	2o	1·50
18.	The Gateless Gate	48	2·00
19.	The Silent Music	41	2·00
20.	Turning In	36	2·00
*21.	The Eternal Message	35	2·00
22.	What is Meditation?	58	3·00
*23.	The Dimensionless Dimension	47	2·00

24.	Wisdom of Folly	213		6·00
*25.	Two Hundred Two	(New Mulla jokes)		
*26.	Meet Mulla Nasrudin			
*27.	Thus Spake Mulla Nasrudin			
*28.	Let Go			
*29.	Beyond Laughter			
*30.	The Inward Revolution			
*31.	I Am the Gate			
32.	Seriousness		41	2·00
*33.	Secrets of Discipleship			
*34.	Dynamics of Meditation			
*35.	The Ultimate Alchemy (2 vols.)			

III. Critical Studies on Bhagwan Shree Rajneesh:

36.	Acharya Rajneesh: a Glimpse		24	1·25
37.	Acharya Rajneesh: The Mystic of Feeling		240	20·00
38.	Lifting the Veil		110	10·00

Note: Star (*) marked books are in press.

For enquiries and books please contact:

Jeevan Jagriti Kendra

(Life Awakening Centre)

Israil Mohalla,
31, Bhagwan Bhuvan,
Masjid Bunder Road,
BOMBAY-9.
Phones: **327618, 321085**

A-1, Woodlands,
Peddar Road,
BOMBAY-26.
Tel.: 381159

मुद्रक प्रकाशक : ईश्वरलाल एन. शाह, जीवन जागृति केन्द्र, ३१, इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड, बम्बई-९ मुद्रणस्थान : स्टेट्स पीपल प्रेस, बम्बई १

In this PDF, the back-cover inside is missing.

Good printing. Inviting. Communicative. Inspiring. Like religion—an experience.

selprint

249-251 A to Z Industrial Estate ☐ Fergusson Road ☐ Lower Parel ☐ Bombay 13. BC ☐ Phone : 370692